—:षष्ट अध्याय:—

गुजरात और पंजाब के संत कवियों का जीवन परिचय और उनके संप्रदायो का अनुशीलन।

यदि हम गुजरात और पंजाब के संत परंपरा में गुरुतत्व का अनुशीलन करते हैं तो हमें उस काल की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन अवश्य हो जाता है । वस्तुतः इस काल की राजनैतिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का स्वरुप शाशन की धर्मान्धता संकीर्णता , असहिष्णुता और कूरता के कारण विकृत हो चुका था। जिस प्रकार गुजरात का समस्त मध्यकालीन साहित्य धार्मिक संस्कारो से आबद्ध था ठीक उसी प्रकार पंजाब का भी । कबीर के 200 सौ वर्ष बाद जिसे अखा दादू आदि कवि एवं विचारक गुजरात में अवतरित हए उसी प्रकार पंजाब में भी गुरुनानक एवं गुरुगोविन्द सिंह जी आदि अवतरित हुए । यदि हम दोनो का तुलनात्मक अनुशीलन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस युग के संतो की वाणी धर्म के नासूरो को चीरकर समाज की सडॉध निकाल फेंकने में नस्तर का काम करती है । अधा और भोजा के चाबुका की तरह सिख संतों के पाखण्डियो और दंभियो के विरुद्ध प्रसिद्ध हैं गुजराती संत कवियों कटूक्तियां की भॉति पंजाब के संत कवियों ने भी दंभी गुरुओं कर्म से डर कर भस्म रमाने वाले सन्यासियों , कथा भागवद् सुना कर आजीविका प्राप्त करने वाले पोंगा पंडितो , विलासिता के गर्त में डुबे हए धर्म के ठेकेदारो ,तथा गाद्दीपतियों को आड़े हाथों लिया है ।

गुजरात के संत कवियों की तरह गुरुनानक देव जी तत्कालीन राजाओं और उनके कर्मचारिओं का चित्रण बड़ भयावह किया है । उनका कहना है कि राजा लोग सिंह हो गये हैं उनके कर्मचारीगण कुत्तों के रुप में परिणित हो गये हैं । वह सब मनुष्यों का रक्त चाटते हैं एवं मांस भक्षण करते है —1। इस समय की राजनैतिक परिस्थिति को चित्रित करते हए नानक जी कहते हैं कि

कलियुग छुरे के तुल्य हैं , राजे कसाई के समान हो गये थे । धर्म अपने पंखों पर उड रहा था । झूठ रुपी अमावस्या का प्राबल्य था सत्य रुपी चन्द्रमा दिखलाई ही नहीं पड़ रहा था स्त्रियों की दुर्दशा की गई । नानक बाबर के आक्रमण और भारतवर्ष की दुर्दशा से चिंतित थे। मुसलमानो ने सबसे पहले पंजाब प्रान्त को जीता । उसकी स्थिति दो शक्तिशाली मुसलमानी राजधानियों दिल्ली और काबुल के बीच में थी । वहाँ मुसलमानो का साम्राज्य पूर्णरुपेण स्थापित हो चुका था । गुजरात में भी मुस्लिम प्रचारकों का आवागमन सातवीं –आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो चुका था । ये लोग भरुच , खंभात् सिंध एवं सौराष्ट्र के बंदरो से आकर गुजरात में रहने लगे । ग्यारहवी शताब्दी के पश्चात् चमत्कारो के प्रभाव से उन्होंने सामूहिक धर्मपरिर्वतन कराना प्रारंभ कर दिया । हिन्दू अधिकारों पर विशेष कर कानून लगा दिये गये थे। सूरत में मात्र हिन्दुओं को विवाह कर देना पड़ता था तथा मोहर्रम का ताजिया उठाना पड़ता था । कब्र भी इन्हीं को गाड़नी पड़ती थी । हिन्दू–देवस्थानो का विध्वंस हो रहा था जिससे हिन्दुओं की श्रद्धा को जबरदस्त ठेस पहुँची थी । हिन्दुओं की आन्तरिक स्थिति अत्याधिक खोखली हो चुकी थी । धर्म के नाम पर बाह्याचार तथा कर्मकाण्ड तथा कर्म काण्ड रह गये थे। दम्भ एवं पाखण्ड का प्रभाव अत्याधिक था, जिससे सत्यनिष्ठा भी पाखंड मानी जाने लगी थी । चमत्कारिक प्रयोगो द्वारा चंदावसूल किया जाता था। कियाकाण्ड तथा उपासना का अधिकार उच्च कहलाने वाली जातियो तक ही सामित रह गया था। निम्न जाति के लोगों को उनके ही हिन्दू भाई हेय एवं निंध समझते थे , जिससे इनकी आस्था हिन्दू धर्म व उनके ग्रंथो से उठती चली गई ।

नानक जी के पदों से स्पष्ट होता है कि वह समय रक्तपात का ही था। आतंक सारे देश में फैला हुआ था। कोई भी ऐसा सूत्राधार नहीं था जो राष्ट्र की समस्त बिखरी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर अत्याचार का सामना कर सके।

गुजरात और पंजाब के विभिन्न संत कवियों संप्रदायों का जीवन परिचय और उनके संप्रदायों का निर्माण :–

वीर बंदा बहादुर के समय से ही सिखों के भीतर दलबंदी का भाव जाग्रत होने लगे । गुरुनानक के देहान्तोपरान्त उनके पुत्र श्री चंद (जन्म सं. 1551) ने अपना ने अपना 'उदासी सम्प्रदाय चलाया और काश्मीर , काबुली , कंधार, पेशावर तथा अन्य कई स्थानों मे भ्रमण करते हुए ठट्ट (सिंध) जैसे नगरों में कई केंद्र भी स्थापित किए । कहा जाता है , ये अपने पिता के गद्दी न पाने पर उदास हो गए थे । इनके अंनतर इसी प्रकार अपने पिता चौथे गुरु रामदास का उत्तराधिकारी न बन सकने के कारण प्रिंथीचंद ने भी एक नया पंथ चलाया था जो "मीनापंथी" के नाम से प्रसिद्ध हुआ और मॉझ अर्थात रावी और व्यास के बीच में बसे हुए मध्यदेश के निवासी हंदल गुरु अमरदास द्वारा दीक्षित हुए थे किन्तु इनके तथा इनके अनुयायियों के विचारों में बहुत भिन्नता आ गई । एक चौथा पंथ गुरुहर राय के पुत्र राम राय के अनुयायियों का "रार्मया पंथ" भी इसी भॉति चल पड़ा था परंतु इन सभी का रुप धार्मिक ग्रंथों के समान ही विशेष रुप से लक्षित होता था और उनके अनुयायियों के भावों के पहले उतनी उग्रता नहीं दीख पडती थी वीर बंदा बहादुर के समय में गुरुगोविंद सिंह द्वारा प्रवर्तित वीर 'खलसा' सम्प्रदाय के भीतर जो दो दल बने उनके रुप कुछ भयंकर दीख पडे । 'सत्तखालसा' तथा 'वंदई खालसा' वालों में से प्रत्येक ने एक दूसरे को पूर्णतयः नीचा दिखाने के भी प्रयत्न किये और हानि पहुँचाई । इन कारणों से सिक्ख धर्म के अनुयायियों का समाज कमशः छिन्न भिन्न होने लगा और धार्मिक दृष्टि से भी उनका अधः पतन आरंभ हो गया । ऐसे ही अवसर पर संवत 1947 के लगभग उसके कुछ अनुयायियों के हृदयों में सुधार की भावना जागृत हुई और उसके लिये प्रवृत होने वाले लोगों ने अपनी नयी संस्थाएं स्थापित करना आरंभ किया जिस कारण कतिपय सुधारक सम्प्रदायों की भी सृष्टि हो गई ।

विभिन्न सिख सम्प्रदायः— सिक्ख—धर्म के अनुसार प्रचलित किए गए संप्रदायों तथा उनके सुधारको की ओर विशेष ध्यान देने वाले समाजों की संख्या बहुत है इनमें से कई के विचारों व व्यवहारों में केवल सूक्ष्म अथवा कुछ बाहरी भेद भी दिखलाई पड़ते हैं । इतमें से कई हिंदू धर्म के अनुयायी जैसे बन गये हैं उनके लिये हम सिक्ख शब्द का प्रयोग केवल नाम मात्र के लिये ही कर सकते हैं इन पंथों का इतिहास तथा इनके अंतर्गत भिन्न भिन्न परिस्थितिओं के अनुसार आ गई हुई प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन एक मनोरंजन विषय होगा । सिक्ख धर्म के इन संप्रदायों के उत्थान व विकास तथा इसी प्रकार से कबीर पंथ के भिन्न—भिन्न उपसंप्रदायों की भी गति विधयों के विचार पूर्ण अवलोकन विश्लेषणात्मक विवेचन के द्वारा मानव समाज की धार्मिक मतोवृत्ति के वास्तविक महत्व का मूल्यांकन भली भाँति किया जा सकता है ।

1:— उदासी संप्रदायः— इस उपरोक्त संप्रदाय के अनुयायिओं को भौतिक अथवा विशेष रुप के राजनीतिक बातों से कभी कोई संबन्ध नहीं रहा है उसके मूल प्रर्वतक श्री चंद बराबर सन्यासियों के वेश में और अधिकतर कदाचित नग्न रहकर ही भ्रमण किया करते थे उनके अनुयायिओं का भी रहन सहन सदा साधूओं की ही भाँति था । सांसारिक बातों की ओर से इनकी ऐसी तटस्थता देखकर गुरुगोविंद सिंह जी इनके प्रति कुछ रुष्ट रहा करते थे और कभी कभी इनकी अहिंसात्मक भोली भाली एवं सादी प्रवृत्ति के कारण इन्हें जैनी तक कह दिया करते थे । तीसरे गुरु गोविंद के पुत्र बाबा गुरुदित्ता ने इसको फिर से जाग्रत किया थे अधिकर कर्तारपुर में रहा करते थे और कीर्ति पुर में मरे थे । वहाँ इनकी समाधि विद्यमान है । इन्हें केवल बाबा जी भी कहा जाता है ।

उदासी संप्रदाय की प्रधान रुपेण चार शाखायें हैं । जो धुँआं कहलाती हैं । और जिन्हें चार उदासियों नें चलाया था ।

1:— फूल साहिब की शाखा बहादुर पुर मे हैं ।

2:– बाबा साहब हसन की चरन कौल में आनन्द पुर के निकट हैं ।

3:– अलगस्त साहिब की पुरी और नैनी ताल में हैं ।

4:– गोविंद साहिब की शिकारपुर (सिंघ) तथा अमृतसर में हैं ।

इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से स्वतन्त्र है। और उनका प्रबंध भी एक भिन्न महंत करता हैं । उदासी लोग सारणतः इधर उधर अपने तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते फिरते है। किन्तु इनकी अधिक संख्या मालवा ,काशी , जालंधर रोहतक व फिरोजपुर में पाई जाती है । ये अपनी पूजा में धड़ी घण्टा बजाया करते है। और ''आदिग्रंथ'' की आरती किया करते हैं इन्हें भरम और विभूति के प्रति बड़ी श्रद्धा है जिसे ये बहुदा अपनें शरीर पर धारण किया करे हैं । इनके दीक्षा संस्कार के समय भी इनका गुरु इन्हें नहलाकर भस्म लगा देता है ये कुछ भस्म को सदा सुरक्षित भी रखते हैं और उसके ऊपर एक जंत्री वा छोटी मढ़ी भी बना देते है। इनका प्रिय मंत्र '' चरणसाधको धो–धो पियो अपर साधको अपना जियो'' है । आजकल ये मैरिक वस्त्र धारण करते हैं साधुओं की भॉति रहा करते है। और विवाह का करना आवश्यक नहीं समझते थे । ये आदि ग्रंथ को मानते हैं इन्होने हिन्दू –साधुओं की आचार विधि को भी कुछ अपना लिया है । इस पंथ के अनुयायियों को कभी–कभी नामा अथवा नानक शाही भी कहा करते है। । इनका मुख्य गुरुद्वारा दोहरा में हैं । और पूर्वी भारत में इसकी 370 गद्दियॉं बतलाई जाती है–2।

<u>संत सुवचना दासी:–</u>उक्त नानक शाही व उदासी संप्रदाय की एक अनुयायिनी संत सुवचना दासी अभी कुछ दिन हुए वर्तमान थी इनका जन्म सं. 1628 ई. में हुआ था और ये गॉंव देहसा (जिला गाजीपुर) के दलसिंगार लाल की पुत्री थीं इन्हें बचपन से ही भक्ति भाव तथा साधु–संतों की सेवा का लग्न था । चौदह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बलिया में रहने वाले जुगल किशोर लाल के साथ हुआ था । एक बार गंगा स्नान करने जाते समय ये हीरा

दास साधू के झोपड़ी में जाकर वहाँ से शीघ्र लौट आई साधु उदासी सम्प्रदाय के ही नागा थे । सुवचना दासी उसी समय से बहुदा शब्द योग का अभ्यास करने व समाधि में रहने लगी थी । किंतु अपने पति की सेवा से अवकाश पाकर ही ये अपनें साधना में लगती थीं । इसका प्रभाव आगें चलकर इनके पति पर भी पड़ा बलिया में रहकर ये सतसंग किया करती थीं इनकी रचनाओं में 'प्रेम तरंगिनि' विज्ञान सागर' विदेह मोक्ष प्रकाश ' अत्यअधिक प्रसिद्ध है इनका एक पद इस प्रकार है –

"मोहि चार दिना रहनारे, भजसिन वाहगुरु ।
छिन छिन उमिर घटत निसिवासर इक दिन उठ चलना रे
अपनी करो फिकर चलने की यही नहीं रहहारे
जप अपजस के साथ चलनारे, सुवचन हरि भजनारो

1:– निर्मला संप्रदायः– इस संप्रदाय की स्थापना वीरसिंह ने गुरु गोविंद सिंह के समय में की थी । ऐसी धारण है कि गुरु गोविंद सिंह को किसी अनुपकौर नाम की रुपवती खत्रानी ने छल पूर्वक अपनें प्रेम पाश में बांधना चाहा था जिसकी प्रतिकिया में गुरु साहब ने मौरिक वस्त्र परिधान करके उससे भेट की और उसके प्रभावों से मुक्त होने के पश्चात वही वस्त्र वीर सिंह को प्रदान करके उन्हें इस पंथ की स्थापना के लिये ओदश दिया। इसी घटना के उपलक्ष में गुरु साहब का 404 कथाओं का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'त्रियाचरित' भी लिखा गया । वीर सिंह ने सबसे अधिक ध्यान व्यक्तिगत पवित्रता एवं आचार शुद्धि की ओर दिया है व इस विषय में वे सदा दृढ़ रहते आये "निर्मलापंथी में लोग बड़े सचरित्र और प्रतिष्ठित समझे जाते थे । ये लोग संस्कृत के विद्वान हुआ करते हैं । साधारणतः श्वेत वस्त्र परिधान किया करते थे । इनका अखाड़ा इनके किसी महंत के शासनाधीन रहा करता था । ये अविवाहित भी होते हैं इस संप्रदाय का भी मुख्य ध्येय उदासियों की ही भॉति गुरु नानक देव के मूल

सिद्धांतो के अनुसार चलना है ये धार्मिककता के साथ सांसारिकता का सबंध नहीं रखना चाहते थे और न इसी कारण राजनीतिक उथल–पुथल का प्रभाव इनपर कभी पड़ सकताहै इनकी भी धार्मिक पुस्तक 'आदिग्रंथ' है ।

3:– नामधारी संप्रदायः– इस संप्रदाय की नींव महाराजा रणजीत सिंह के एक सेवा के व्यत्ति भाई राम सिहं ने रख जो कि लुधियाना के निवासी थे । रणजीतसिंह की सेवा का परित्याग करने के पश्चात इन्हें वैराग्य हुआ और ये कैबलपुर जिले के किसी उदासी सम्प्रदाय बाले बाबा बालक राम से दीक्षित होकर अपने अनुयायी बाबा बालक राय को 11वां तथा राम सिंह को को 12वॉ सिख गुरु मानते हैं और एक विशेष प्रकार की भेष भूषादि पक्के निरामिष भोजी हुआ करते है। नामधारियों के अलावा किसी ओर के हाथ का बना भोजन तक ग्रहण नहीं करते थे । ये खादी वस्त्र धारण करते थे और आपसी झगड़ों को जहॉतक संभव हो खुद ही निपटा लेना उचित समझते हैं गुरु की सेवा ये अपनें प्राण न्यवक्षावर करके भी अगर हो सके तो उससे कभी पीछे नहीं हटते थे । इन्हें कूका' नाम से भी जाना जाता है । कूका का शाब्दिक अथ कूक करने वाला होता है जिसका इस अभिप्राय इस पंथ वाले अराधना के अवसर पर सिर हिलाया और चिल्लाया करते हैं तथा अंत में 'सत श्री अकाल' कहते कहते भावावेष में आजाते सर्वप्रथम ये पंथ पौरो हित्य के विरुद्ध चलाया गया था । ये लोग गौ हत्या के भी कट्टर विरोधी हैं और अपनें ही अनुयायिओं द्वारा बहुत से कसाइयों की हत्या किये जाने पर इनके गुरु रामसिंह को 'रंगून' में निर्वासित होना पड़ा था जहॉ ये संवत 1945 में मरे थे कूका लोग एक प्रकार की सीधी (पाग) पगड़ी बॉधते है।

4 सुथराशाही :–इस धर्म की स्थापना किसी सुथराशाह ने की थी । इनके बारे में ऐसा कहा जाता है कि इनके पिता ने इनका परित्याग इनके गंदे ढ़ंग से रहने के कारण कर दिया था । सर्वप्रथम इन्हें गुरु हरगोविंद सिहं जी इन्हें सुथरा

और स्वच्छ कहकर अपनाया था परंतु इस बात को कुछ लोग अनैतिहासिक मानते हैं । उन्हें सुथराशाह कहे जाने का मूल कारण उनके सुतार या बढ़ई के वंश में जन्म लेना ठहराते हैं ।2, अ– । कुछ लोग सुथराशाह को गुरु अर्जुन का शिष्य समझते हैं व दूसरे लोंगों का कहना है कि वे गुरु हरिराय के समकालीन सूचा नाम के ब्राह्मण थे जो पीछे सुथराशाह कहलाए । कुछ लोंगो का कहना है कि इस पंथ का प्रचलन गुरु तेग बहादुर नें किया था । इस संप्रदाय के अनुयायिओं के प्रति सर्वसाधारण की श्रद्धा आजकल पूर्ववत नहीं देखी जाती । ये लोग अधिकतर दो लोहे के डंडे बजाकर पैसे मांगने में दुराग्रह करने वाले व्यक्तिओं के ही रुप में देखे जाते हैं । पूर्व में तो इनके लिये ये कहावत मशहूर है कि

" केहू मुये केहू जिये , सुथरा धेरि बतासा पीये। " ,2–ब ,

सुथराशाहीओं को प्रधान केंद्र पहले पठान कोट के निकटवर्ती नगर बुरहान पुर में था परंतु पीछे वहॉं से हट कर लाहौर में कश्मीर दर्वाजे पर आ गया । सुथराशाह बड़े मशहूर पुरुष कहलाते है। । इन्होंने गुरु हरगोविंद की बड़ी सहायता की थी । जिस कारण उन्हें मुगलों का अत्याचार भी सहन करना पड़ा था। परंतु उनके अनुयायिओं में इस प्रकार के लोग नहीं पाये जाते थे और इस पंथ की बहुत कुछ अवनति भी सुनी जाती हैं –3। सुथराशाही अधिकरत पंजाब व बंगाल में पाएँ जाते हैं ।

5:– सेवापंथी संप्रदाय:– इस उपरोक्त पंथ की सीापना कन्हैया नामक व्यक्ति के कारण हुई थी वह सेवा धर्म का बहादुर अनुयायी था और मुगलों द्वारा गुरु गोविंद सिंह के आनंदपुर वाले दुर्ग पर चढ़ाई किये जाने पर उसनें शत्रु एवं मित्र दोनों के दलों को पानी पिलाने की व्यवस्था समान रुप से की थी । गुरु गोविद सिंह ने उसकी बहुत प्रशंसा की और मानव जाति का सच्चा सेवक बतलाया कन्हैया ने अपनें विचारों के आधार पर यह नया पंथ चलाया व

उनके अनुगामियों की संस्था दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गई । उनके एक सेवा राय नाम के शिष्य के नाम पर से ही सेवा पंथ अस्तित्व में आया । एक दूसरे शिष्य के नाम पर अमृतसर में इस सप्रदाय के अनुयायी अदलशाही कहलाते हैं सेवा पंथी कहलाने सिख आज भी अपनी निःस्वार्थ सेवा व सहृदयता के लिये प्रसिद्ध हैं। वे ईमानदारी के साथ मजदूरी करने और रस्सी बॅटने जैसे छोटे छोटे काम करके भी खाना अधिक पसंद करते थे । यदि वे भिक्षावृत्ति भी स्वीकार करते है तो जो कुछ मिल जाए उसी में सन्तोष मान लिया करते हैं ।

6:— अकाली संप्रदाय:— उक्त सिख सम्प्रदायों में से 'निर्मला' को छोड कर अन्य सभी 'सहजधारी' भी कहलाते हैं क्योंकि उनका मुक्ष्य उद्देश्य पूर्ववत ही रहना है । किन्तु निर्मला एवं विहंग कहलाने वाले लोंगो को कभी–कभी 'सिंहधारी' कहा जाता है। । 'निहंग' का शब्दार्थ निश्चित वा निर्भीक समझा जाता है । इन लोगों के अन्य नाम ' अकाली' और 'शहीदी' भी है । ये लोग खालसा संप्रदाय के पक्के अनुयायी होते है । इनकी धार्मिक प्रवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक वा सामाजिक बातों द्वारा भी प्रभावित रहा करती है । इनका अर्विभाव वास्तव में खालसा सम्प्रदाय की उत्पत्ति के पहले अर्थात सं 1747 के लगभग मानसिंह के न्यायकत्व में हुआ था जिस समय चमकोर के छोटे से दुर्ग में केवल 40 सिखों ने मुगल सेना का सामना किया था । अंत में वहॉ से गुरु गोविंद सिंह का भेष बदल कर स्थान छोड़ देना पड़ा था। उस समय उन्होंने मार्ग में फकीरों के नीले वस्त्र पहन लिये थे जिन्हें उन्होंने निर्दिष्ट गॉव तक पहुॅचा कर अपनें योग्य साथी मान सिंह को दे दिया था उन्हें एक नवीन पंथ चलाने की अनूमति भी दे दी गई थी । अकाली लोग इसी लिये नीले वस्त्र को अधिक पसंद करते हैं और उसी के साफे बॉधा करते हैं जो बहुदा उनके ललाट की ओर दीख पड़ता है । कहते है दिल्ली के किसी खत्री नन्दलाल ने गुरु गोविंद सिंह से कभी पीले वस्त्र पहनने का आग्रह किया था । जिसे गुरु ने

स्वीकार कर लिया था । उसी के स्मारक रुप ऐसा किया जाता है ।

अकाली पारस्परिक सहायता के बड़े इच्छुक पाये जाते है । इनके नियमों में एक यह भी प्रसिद्ध है कि भोजन करते समय ये चिल्लाकर पूछ लेते हैं कि क्या किसी को भोजन की आवश्यकता है और किसी के हॉ कह देने पर अपनी थाली में से कुछ अंश निकाल कर दे देते है। । ये गॉजा तम्बाकू आदि कभी नहीं पीते, किन्तु कभी भंग छान लिया करते है। । इनके सिद्धान्तो के आधार पर धार्मिक आचार विचार एवं युद्ध संबन्धी कार्यो में कोई भी मौलिक अंतर नहीं और न सार्वजनिक जीवन में पूरा भाग लेकर उसे उन्नत रुप में अग्रसर करते रहना किसी भी प्रकार से धार्मिक रहन–सहन के विपरीत समझा जा सकता है । इसके सिवाय उनका उद्देश्य यह भी जीन पड़ता है कि सिख धर्म के अनुयायिओं को एक अलग जाति के रुप में स्वीकार किया जान सर्वथा उचित है । इसी लिये ये हिन्दू धर्म द्वारा अपनाई जाने वाली परम्पराओं की ओर ध्यान न देकर अधिकतर सिख धर्मोचिंत नवीन बातों को ही प्रश्रय देते है। ये परमात्मा को सदा ''अकालपुरुष'' के नाम से ही पुकारते हैं अपनें ढ़ंग से वस्त्रदिधारण किया करते थे व अमृतसर के ''अकालतख्त'' को सबसे अधिक महत्व व प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं ।

महाराजा रणजीत सिंह के समय से इनका एक प्रधान स्थान आनंदपुर भी समझा जाने लगा है । अकाली लोग स्वभावतः शूरवीरों का जीवन अधिक पसंद करते हैं और और इनकी साम्प्रदायिकता कट्टरपन की सीमा तक पहुॅच जाया करती हैं। इन्होंने ही विक्रम की 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध से ही कई प्रकार के सुधारों का सूत्रपात किया है। और आज तक लड़ भिड़कर अनेक अधिकार भी हस्तगत कर लिए हैं। सं. 1947 के लगभग प्रतिष्ठित ' सिंह सभा' के प्रसिद्ध आन्दोलन द्वारा सिख जाति के अंतर्गत राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो उठी थी और नामधारियों द्वारा भी उसे पूरी सहायता मिली थी। किन्तु अकालियों की

एकांत निष्ठा ने इसे कहीं अधिक शक्ति प्रदान कर दी और उनमें आत्मनिर्भरता के भाव भर दिए। इन्होंने समय पर अनेक सत्याग्रहों द्वारा भी विजय हासिल की।

7:– भगत पंथी : – 'भगतपंथी ' सिख अधिकतर वन्तू जिले के पहार पुर में और डेरा इस्माईल खॉं की तहसील में पाए जाते हैं । ये विवाह मृत्यु आदि के अवसरों पर किसी विधि–विशेष की ओर ध्यान नहीं देते । ये ग्रंथ साहिब' को घर पर ले जाते है और उसके कुछ अंश वही विवाह के अवसर पर पढ़ लेते है। मृत्यु के समय इनके शव गाड़े जाते है। जलाये नहीं जाते , और उसके अनंतर कुछ दिनों तक धर्म ग्रंथ के कुछ अंश पढ़े जाते रहतें हैं । इनमें छुआछूत का विचार बिलकुल नही रहता ये कभी तीर्थ व्रत, मूर्तिपूजा, श्राद्ध आदि का ही नाम लेते हैं । इनके यहॉं नित्य प्रति की प्रार्थना आवश्यक तो है ही मगर वो भी दिन में छः बार होती है । सूर्योदय के पहले , दोपहर के पहले, दोपहर के अनंतर, सूर्यास्त के पहले सायं काल एवं रात को प्रार्थना के समय ये आठ बार बैठते और उठते हैं । आठ बार साष्टांग दंडवत भी करते है। ये शुद्ध 'सिख धर्म के उपासक हैं –4।

8:– गुलाब दासी:– इस सम्प्रदाय के प्रधान संचालक गुलाबदास पहले उदासी थे । कूसूर के हीरादास के प्रभाव में पड़कर उन्होने उदासियों की परंपरा का परित्याग कर दिया । इनकी रचना ' उपदेश विलास' नाम से प्रसिद्ध है इनके मत का मुख्य उद्देश्य आनंद है । जिस कारण इनके अनुयायी बाल नहीं रखते है सुंदर से सुंदर कपड़े पहनते हैं व ऐश्वर्य भोगते हैं ये असत्य के प्रति बड़ी घृणा प्रदर्शित करते है। ये ईश्वर की भावना में भी वैसी आस्था नहीं रखते व, न इसकी कोई आवश्यकता महसूस करते हैं । ये लाहौर , जालंधर, अमृतसर , फिरोजपुर, अम्बाला व करनाल में अधिकतर पाये जाते हैं ।

9:– निंरकारी–सम्प्रदाय:– इनका प्रर्वतन खत्री भाई देयाल दास ने किया

था जो सं. 1862 में इनके पुत्र भाई दास व दरबारा सिंह ने उत्तराधिकार ग्रहण किया था । ये लोग शुद्ध निंरकार की आराधना करते हैं । जो प्रर्थनायें सुना करता है । प्रत्येक मास के प्रथम दिवस को ये विशेष रुप से पवित्र मानते है । उस दिन 'ग्रंथ' का अध्ययन वा श्रवण विशेष रुप से होता है इनकी विशेष श्रद्धा गुरु नानक देव के ही पदों के प्रति रहा करती है । रावलपिंडी में लेई नाम की जल धारा के निकट इनका अमृतसर बिलकुल अलग बना हुआ है जाहाँ पर इनके गुर्दे भी जलाये जाते है। रावल पिंडी ही इनका प्रधान केंद्र है –5।

अन्य सम्प्रदायः– अन्य सिख संप्रदायों में से प्रिथी चंद के 'मीनापंथी' राम राय के 'रमैयापंथी' तथा हदल के हंदली सम्प्रदाय के संबन्ध में पहले चर्चा की जा चुकी है । इन सबका मतभेद मूल सिख–धर्म के सार्थ सर्वप्रथम व्यक्तिगत या अधिक से अधिक साम्प्रदायिक मात्र ही रहा है हंदलियों ने तो स्वयं गुरुनानक विरुद्ध भी कुछ न कुछ कह डाला। ये लोग निरंजनी कहलाकर भी प्रसिद्ध हैं । क्योंकि इस सम्प्रदाय के मूल प्रर्वतक ने ईश्वर को 'निरंजन' शब्द द्वारा ही अभिहित किया था। इनका गुरुद्वारा जंडियाल में "बाबा हंदल का दरबार साहब' के नाम से प्रसिद्ध है हंदल की मृत्यु सं. 1711 में हुई थी उनके उत्तराधिकारी देवी दास हुए थे जो उनकी मुसलमान पत्नी से उत्पन्न हुए थे । इन्हें सिखों के साथ विरोध भाव रहा जिस वजह से महाराजा रणजीत सिंह सिंह ने इनकी भू–संपत्ति भी ज़प्त कर ली थी कहा जाता है कि इन्होंने अहमदशाह अब्दाली की भी सहायता की थी और इस कारण भी अन्य सिख इन्हें शत्रुवत मानते थे । हंदलियों के अतिरिक्त उदासियों का एक उपसंप्रदाय 'दीवाने साध' नाम का भी था जो अपने को धार्मिक उन्मादी माना करता था फ़िर उक्त सभी सम्प्रदायों में से प्रसिद्ध व प्रभावशाली वर्ग अकालियों का ही रहता है ।

भाण साहबः– (सं. 1754–1811) गुजरात में 'भाण' नाम के अनेक संत हुए है । एक कच्छ, मांडवी के रहने वाले गिरनार ब्राह्मण भाण जी मोहन जी

'सं. 1622' जिनके पॉच हिन्दी पदों का संग्रह आध्यात्म भजनमाला भाग–2, में मिलता है –6। दूसरे भाणदास का उल्लेख गुजरात के आद्य गरबीकार के रुप में श्री. के. का. शास्त्री जी ने किया है –7। इनके अनुसार दूसरे भाणदास जी के पिता का नाम भीम तथा भाई का नाम दामोदर बताया गया है । आचार्य अनंतराय रावल ने इनके गुरु का नाम कृष्णपुरी बताया है –8। इन्होंने 'हस्तामलक' की रचना की थी। इनकी 71 गरबों की एक हस्त प्रति उपलब्ध हुई है। आचार्य रावल ने इनके द्वारा रचित ' अजगर–अवधूत–संवाद' का भी उल्लेख किया है –9। एक अन्य कवि भाण गुजरात के औदीच्य ब्राह्मण हो गये हैं । जिन्होंने 'संकट मोचन' हिन्दी ग्रथ की रचना की है –10। यह ग्रन्थ बड़ा ही उत्कृष्ट है। किन्तु इन सभी में बाराही के भाण साहब अत्यन्त प्रसिद्ध है। जो कबीर के अवतार एवं 'सोरठी–आद्यभक्त' माने जाते है इनकी वाणी का अत्यधिक प्रचार सौराष्ट्र में हुआ था । इनके साहित्य पर सोरठी संस्कारों की छाप गहरी है । सौराष्ट्र के जन मानस में आज भी भाण साहब का स्थान 'सोरठ ने कबीर' के रुप में अवस्थित है ।

गुजरात के 'कनखीलोड़' नामक गॉव में संवत 1754 में इनका जन्म हुआ–11। लोहाणा जाति के थे । पिता का नाम ठक्कर कल्याण जी स्वयं भक्तात्मा थे और माता अंबाबाई साधवी गृहिणी थी। ये स्वयं भी गृहस्थ थे । इनकी पत्नी का नाम भानबाई साधवी था जिनसे इन्हें दो पुत्रों का होना बताया जाताहै । एक की मृत्यु पॉच वर्ष की अवस्था में ही हो गई दूसरे पुत्र खीमदास जो पिता के स्वरुप ही ज्ञानी तथा ईश्वर भक्त निकले । रापर की गादी–परम्परा खीमदास से ही शुरु होती है ।

भाण साहब के गुरु के संबन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है यद्यपि जनश्रुति के आधार पर इनका गुरु कोई 'ऑबो–छट्ठो भरवाड बताया जाता है' , जिनके उपदेश से गृहस्थ से विरागी एवं सत्य शोधक बन बैठे । लाधाभाई –12, को भाण साहब का गुरु भाई बताया जाता है –13,। ये

आष्टमदास जी के उपदेशो से ही उनके शिष्य बनें–14। इनकी कुछ हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध है –15। भाण साहब किसी एक स्थान टिक कर नहीं बैठते थे । वे अपनें भ्रमण में भी चालीस शिष्यों कों लेकर चलते थे। जिसके फलस्वरुप उन्हें रास्ते में अनेक कठिन परिस्थितिओं से गुजरना पड़ता था। इनका हृदय जितना उदार था, उतने ही उदार इनके सिद्धांत थे। इसी लिये जामनगर में 'सा' व' के पद से विभूषित किया गया। जामनगर की एक वापिका 'भाण वीरणी' नाम से प्रसिद्ध है । भाण साहब के प्रताप से उनका जल मीठा रहता है । इनके विषय में अनेंक दन्त कथाएँ प्रचलित हैं कहा जाता है कि कमीज़ड़ा से प्रस्थान करते समय एक श्रद्धालु नारी के हठाग्रह पूर्वक यह कहे जाने पर कि – 'आगे बढ़ो तो आपको राम दुहाई है ।' उन्होंने उसी स्थान पर जीवित समाधि लेली। ऐसा कहा जाता है , यह घटना सं. 1811 में घटित हुई।

भाण साहब द्वारा रचित दो ग्रंथो 1:– हस्तामलक, 2:– रावण मन्दोदरी संवाद, तथा कुछ पदों का उल्लेख मिलता है –16। रवि भाण तथा मोरार नी, वाणी' में भाण साहब के कुछ हिन्दी पद संग्रहीत है। इनकी भाषा तथा विचारों को देखते हुए इन्हें कबीर का अनुगामी कह सकते है । जगत की क्षण भंगुरता की ओर इन्होंने भी जन साधारण का ध्यान आकृर्षित किया है ।

दीन दरवेशः– (18 वीं शती के उत्तरार्ध से पूर्व 16वीं शती पूवार्द्ध) ये मूल पालनपुर के निवासी तथा जाति के लुहार थे । 'कल्याण सन्तवाणी अंक में इन्हें उमोड़ा का बताया गया है । इनकी जन्म तिथि सं. 1863 वि. दी गई है –17। ईस्ट ईण्डिया की एक सेना में ये मिस्त्री का काम करते थे । संयोग वश गोला लगने से इनकी बॉह कट गई और कंपनी सरकार ने इन्हें नौकरी से निकाल दिया–18। वही से घर बार छोड़ कर ये साधुओं के साथ भ्रमण करने लगे। अन्त में किसी नाथ पंथी साधू बाबा बालानाथ को अपना गुरु बनाया। जो गिरनार के निवासी थे दीन दरवेश ने यद्यपि अनेक सूफी फकीरों और वेदान्ती

आचार्यों का सत्संग किया था परंतु गुरु के आदेशानुसार उन्होंने स्वतन्त्र रुपेण अपनें सिद्धांत निश्चित किये और आजीवन उन्हीं का प्रचार करते रहे–19। दीन दरवेश की कुँडलियां अत्यंत प्रसिद्ध है । डॉ बड़थ्वाल ने इनके द्वारा रचित सवालाख कुंडलियों का अनुमान किया है । प्रसिद्ध इतिहज्ञ महामहोपाध्याय पंडित गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा के पास उनकी बानी एक संग्रह है किन्तु उसमें संग्रहीत कुडलियां की संख्या इसकी शतांश भी नहीं है–20 । इनकी वाणी अत्यंत बोधमय एवं सरल है । भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है जिसपर पंजाबी तथा गुजराती का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है जैसे:–

1' वंदा कहंदा मै करा, करनहार करतार,
तेरा कहया सो होय न, होसी होवण हार।

2:– हिन्दू कहें सो हमें बड़े, मुसलमान कहें हम्म,
एक मूँग दो फाड़ है , कुण ज्यादा कुण कम्म,
कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहीं कजिया।

रविसाहब:– (सं. 1783–1860) इनका नाम गुजरात के उल्लेखनीय संतों में विशेष रुप से लिया जाता है । ये ताणछा गॉव के सूदखोर वणिक थे। जिन्हें भाण साहब के सदुपदेशों से सांसारिकता के विरिक्त हो गई है –21। यही रवजी बनिया' आगे चलकर संत रविदास के नाम प्रसिद्ध हुए। इनके पिता का नाम मनछा राम तथा माता का नाम इच्छाबाई बताया जाता है –22। इनके गुरु भाण साहब हैं । उन्हीं से इन्होने 1809 के वर्षोत्तर में दीक्षा प्राप्त की–23। भाण साहब द्वारा रोपे हुए बीज को अंकुरित एवं पुष्पित रवि साहबने किया ।

शेरखी में गद्दी प्रस्थापित कर इन्होने अपने ज्ञान का प्रचार किया। इनकी अन्तिम इच्छा जामखंभालिया में समाधिस्त होने की थी जो कि रास्ते में बीमार पड़ने के कारण पूरी नहीं हो पाई । बीकानेर में सं. 1860 में

इन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। परंतु इनको समाधिस्त मोरार साहब के यहाँ जाम खंभालिया में किया गया है । इनकी समाधि पर राम चन्द्र जी का मन्दिर बना हुआ है। इन्होंने गुजराती तथा हिन्दी में रचनाएँ की है । चिन्तामणि , भाण गीता' मनः संयम, पंचकोश प्रबन्ध, रविभाण प्रस्नोत्तरी, गुरु महातम्य, साखियाँ, स्फुट पद।

<u>रवीम साहबः– (उप. काल. सं. 1826)</u>

ये भाण साहब के पुत्र तथा रापर की गादी के अधिकारी थे। भाण सम्प्रदाय के अनुयायी इन्हें 'दरिया पीर' का अवतार मानते है । क्योंकि इनके नयनों में नूर का दरिया दिखाई देता था। इसी लिये इन्हें खलक दरिया खीम–साहब भी कहा जाता है । भाण साहब की विशेष अनुकम्पा इन पर न होने के कारण इनका हृदय खिन्न सा रहता था। परन्तु जिस समय इन्हें रविसाहब के योग तथा ज्ञान की ऊँचाई का पता चला तो इनका संपूर्ण दर्प दब गया है –24। इनकी वाणी में मूर्ति पूजा, तीर्थयात्रा, तथा बाह्यकर्मकाण्डों के प्रति खण्डन तथा घट में ही गुरु को प्राप्त करने की अर्न्तमुखी साधना का मण्डन हुआ है । इनके पदों में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेम योग साधना के दर्शन होते है । इनकी विचार धारा कबीर की वाणी से पोषित होती है । इनमें अनुभूति की तीब्रता के साथ भाषा की सरलता और संगीतात्मकता भी विद्यमान है ।

<u>प्रीतम दास जी:– (मृत्यु सु. 1854)</u> गुजराती संत साहित्य में अखा के पश्चात् जितनी लोकप्रियता प्रीतम दास जी को मिली उतनी संभवतः किसी अन्य को प्राप्त नहीं हो सकी । इनके जन्म के विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता हैं । परंतु प्रमाणों के आधार पर इनका जन्म संवत् 1775 से 1780 के बीच तय किया जा सकता है । प्रीतम दास के मन्दिर से उपलब्ध पोथियों में उनके पिता का नाम प्रतापसिंह और माता का नाम तेजकँबर बा मिलता है । प्रीतम दास मूलतः बालवा के निवासी थे। प्रीतम दास के विवाहित तथा अंध होने के सम्बन्ध

में भी अनेक मत मतान्तर प्रचलित है । श्री के. एम.झवेरी ने उत्तरावस्था में इनका अन्ध होना बताया है –25। इनके मन्दिरों में इन्हें जन्मान्ध माना जाता है । ऐसा मानना है कि भाईदास प्रीतम के दीक्षा गुरु और ज्ञान की ज्योति जगाने वाले बापू रहे होंगे।

धीरा:– धीरा का जन्म सावली–गोरठा बारौट जाति में हुआ था । इनके पिता का नाम बारोट तथा माता का नाम देवाबा था। धीरा विवाहित थे । इनकी पत्नी का नाम जतनबा बताया जाता है । ऐसा कहा जाता है कि इनका गृहस्थ जीवन सुखी नहीं था। बचपन में किसी अध्यारु के पास ये विद्या अभ्यास के लिये जाया करते थे । वहाँ अनका मन नहीं लगा। ठोकर खाते–खाते युवा वस्था के किनारे पहुँच कर सत्रह वर्ष की आयु में महिसागरके किनारे किसी बनबासी साई का समागम हुआ। वैष्णव कुल धर्म को छोड़ कर वे रामानन्दी पंथ में दिक्षित हुए –26। धीरा ने 25000 पद लिखे जिनमें से अभी तक बहुत ही कम प्रकाश में आ पाये है इनका शिष्य वर्ग विशाल था। कहा जाता है कि ये अपनीं रचनाएँ लिख–लिख बॉस की नली में बन्द करके नदी में बहा दिया करते थे। इस प्रकार दूर दूर तक इनकी रचनाओं का प्रचार हो जाता था। धीरा की काफियाँ अत्यधिक प्रसिद्ध हैं जो कि अंग्रेजी के सोनेट के अनुसार चौदह पंक्तिओं की है । इनका मुख्य स्वर आत्मज्ञान है । अखा के अनुसार ही धीरा ने भी गुरु शिष्य संवाद को ध्यान में रखकर अपनीं विचार तालिका को 'प्रश्नोत्तर'मालिका' में कमबद्ध आयोजित किया है । वे मत मतान्तरों और सम्प्रदायों का इन्होंने डटकर विरोध किया है । वेदान्त का सामान्य स्वरुप सरल भाषा में इन्होंने जन साधारण के आगे रखा। माया के मोह के रुप में स्वीकार कर धन मोह, विद्या मोह, पुत्र मोह, स्त्री मोह, कीर्ति मोह, आदि स्थूल विभाग कर अन्त में धीरा ने उसे अर्निवचनीय कहा है ।

कौशिकराम मेहता नें धीरा की वाणी को सरल , स्वाभाविक , स्वच्छन्द और वीरत्व से पूर्ण बोधक, मृदु, कठोर होकर भी मधुर हथौड़े और पानी के

प्रवाह तथा तोप गोलों में भी सूराख कर देने वाली वाणी है –27।

त्रीकम साहबः– बागड़ के रामबाव नामक गॉव में निम्न जाति में इनका जन्म हुआ था। हरिजन होने के कारण इन्हें खीम साहब का शिष्य में अनेंक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । लोंगो ने इन पर पैरों की जूतियां तक उछाली, परंतु इनके हृदय की पवित्रता एवं नम्रता को देख कर खीम साहब ने जन मत को भी ठुकरा दिया एवं इन्हें अपना शिष्य स्वीकार किया। चित्तौड़ में जाकर इन्होंने एक विशाल मढ़ी तैयार की और वहॉं रहकर रवि भाण संप्रदाय का प्रचार करने लगे –28। रवीम साहब के प्रति इनकी अटूट श्रद्धा थी–29। इसलिये इन्होंने अपनें शिष्यों से अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की थी कि उनके शरीर त्याग के पश्चात उनके देह को खीम साहब की समाधि के समीप ही समिधस्त किया जाए। संवत 1858 में इन्होंने जीवित समाधि ली–30।

मोरार साहबः– (जन्म संवत 1814) ये मारवाण के थराद नामक रजवाड़े के पुत्र थे। बघेला राणावंश में इनका जन्म संवत् 1814 में हुआ था–31 , इनके दो नाम बताये जाते है । पहला नाम मान सिंह जिन्होंने रविदास के बोध प्रद वाणी से प्रवाहित होकर विवाह करने से इन्कार कर दिया । अपनी विधवा माता की इच्छा को ठुकराकर ये वैरागी हो गये । ऐसा कहा जाता है कि इनके आग्रह के वश में होकर स्वयं इनकी माता इन्हें रविदास के पास ले गई और जाम जामनगर में इन्होंने भेष धारण किया–32। संवत 1832 से इन्होंने रवि साहब से शेरखी में दीक्षा ली और राजकुँवर से भेषधारी मोरार बन गये । खंभालिया में गुरु आज्ञा के गद्‌दी स्थापित की। रवि साहब की विशेष कृपा इनपर थी। संवत् 1905 में इनका समाधिस्त होना बताया जाता है ।

मोरार साहब की वाणी में प्रेम पीड़ा एवं करुणा का भाव सहज ही उमड़ पड़ता है । मन का वैराग्य एवं गगनध्वनि के प्रति आकर्षण ही कवि के प्रेम –पंथ का प्रथम सोपान है –33। मोरार साहब की वाणी काव्यत्व से पूर्ण एवं हृदय को स्पर्श करने वाली है ।

जीवण दासः– इस नाम के प्रायः तीन कवियों का उल्लेख मिलता है । एक लुनावाड़ा के पास मही नदी के दक्षिण तट पर स्थित सीमलिया गॉव निवासी, जाति के वैश्य थे। अखा जी की शिष्य परंपरा में ये अखा के शिष्य लालदास के शिष्य थे । 'जीवन गीता' इनकी प्रमुख गुजराती रचना है । हिन्दी में लिखे हुए इनके भजन, पद और साखियॉं उल्लेखनीय हैं । 'अकल रमण 'नामक कृति में कुल –364, साखियॉं हैं । जिनकी भाषा गुजराती –हिन्दी है । दूसरे अवस्थित मच्छनगर के निवासी जिनकी कुछ गुजराती गरबियॉं प्रकाशित हुई है । तीसरे संत कवि रवि भाण सम्प्रदाय के सम्बद्ध है । जो घोघावदर गॉंव के निवासी थे। ये जाति के चमार थे । इनके पिता का नाम जगा भाई तथा माता का नाम सामबाई था। इनके पदों में 'दासी–जीवण' की छाप मिलती है क्योंकि इन्होंने ब्रह्म की उपासना दासी भाव से की है । जिस पर वैष्णवी–प्रभाव माना जा सकता है । इनके गुरु का नाम भीम था । भीम त्रीकम दास के शिष्य थे । कहा जाता है कि जीवणदास जी ने सत्तर गुरु बदले । संत भीम की भेंट होते ही इनके हृदय के कपाट खुल गये । इनकी दो पत्नियॉं बताई जाती है । अतः इनका भेष घरबारी होते हुए भी मस्ताना था।

इनके पद मीरॉं के पदों की तरह अत्यंत लोकप्रिय है । संख्या की दृष्टि से भी इनके पदों क संख्या काफी बताई जाती है । इनके पदों में भी कबीर की सी मस्ती दिखाई देती है ।

भोजाः– (सं. 1841–1906) इस नाम के गुजरात में एक से अधिक कवि हुए है । एक सुप्रसिद्ध 'चावखा' वाले भोजा, और दूसरे है सूरत निवासी 'चंद्रहासा–ख्यान' के रचयिता–34। सूरत में इस वि के नाम से (भोजा शेरी) एक परिचित गली भी बताई जाती है नवसारी में भोजा भगत की एक देहरी भी है –35। हम यहॉं पहले 'चाबखा ' के रचयिता की चर्चा औरउनकी रचनाओं के बारे में विचार करते हैं । भोजा को सावलिया भी कहा जाता है । इससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज सावली के निवासी थे । किसी कारणवश बहुत काल

से काठियावाड़ स्थित जेतपुर के पास ही गालोल नामक गाँव में जा बसे । करशन दास नामक कणबी के यहाँ संवत् 1845 में भोजा का जन्म हुआ था । इनकी माता का नाम गंगाबाई था। भोजा के दो भाई भी बताये जाते है । जो इनके प्रभाव से 'करमण--भक्त' तथा 'जंसो भक्त' के नाम से प्रसिद्ध है । कहा जात है कि बारह वर्ष अवस्था तक ये दूध पर ही पले। बहुश्रुत होने के कारण इनका योग वेदान्त तथा संसार का ज्ञान अत्यंत विशाल था। भोजा की कृति में हृदय की उष्मा प्रतीत होती है । प्रामाणिकता और जीवन भर की तन्मयता प्रतीत होती है , किन्तु उसमें संस्कार नहीं , ज्ञान नहीं, व्यवस्था नहीं, और इस प्रकार साहित्यकार के रुप में उसकी गणना संभव नहीं होती –36। क्योंकि संस्कारों के अभाव में भोजा की वाणी कहीं भी कुंठित नहीं होती है । संत साहित्य में जो कुछ भी लिखा गया, अनुभव के बल पर ही लिखा गया है । साधना और सच्चाई की यह पगडंडी अव्यवस्थित जरुर है परंतु विकृत नहीं ।

भोजा के गुरु के संबन्ध में कोई प्रमाणिक सामग्री नहीं उपलब्ध होती । जनश्रुति के अनुसार उन्होंने गिरनार की ओर से आने वाले किसी रामेतवन नामक संत से दीक्षा ली। ये अजपा जाप करते थे । ऐसा कहा जाता है कि बारह वर्ष की घोर तपस्या से इन्हें अनेंक सिद्धियां उपलब्ध हुई जिससे ये चारों दिशाओं में प्रसिद्ध हो गये । जन श्रुति के अनुसार सौराष्ट्र के दीवान जी विट्ठल राव ने इनकी परीक्षा लेने के लिये एक बार इनसे कुछ सुनने का आग्रह किया तो उन्होंने 150 चाबखों की रचना उसी समय की थी। भोजा नें संवत 1602 में वीर पुर में देह त्याग किया। वीरपुर में भोजा का मन्दिर है । जाहँ इनकी पादुकाएँ पूजी जाती है । इनके चाबखे गुजरात में बड़े आदर से गाए जाते है । चाबखों की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है ।

<u>सिख धर्म के अन्य फुटकर सन्तः–</u> फुटकल संतों में संत जंभनाथ , संत शेख फरीद, संत सिंगा जी, संत दलुदास, संत भीषण जी आदि का नाम लिया जा

सकता है । संत जंभनाथ व जंभा जी का जन्म संवत 1508 विकमी कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि सोमवार के दिन हुआ जोधपुर के नागोर क्षेत्र के पीपासर गॉव में हुआ था। इनके पिता का नाम लोहित और माता का नाम हासा था। इनकी जाति परमार राजपूत की थी । ये अपनीं माता की एक मात्र संतान थे । इस समय इनके जन्म स्थान पर एक मंदिर बना है । जिसका जीर्णोद्धार प्रेमदास ने करवाया था इनके किसी गुरु का पता नहीं चलता इनके बचपन में पढ़े लिखे होने का ही उल्लेख मिलता है । चमत्कार के कारण ही ये अचंभो से जंभा जी कहलाये –37। ये गूंगे थे । इनका गूंगा पन मिटाने के लिये इनके पिता ने बागोर की देवी की बारह दीप जलाकर पूजा करनीं चाही किन्तु इन्हेंने दीपक बुझाकर उपदेश देना शुरु कर दिया । इनकी रचनाओं में इनके अनुभवों की गंभीरता स्पष्ट परिलक्षित होती है यह अपनें समय के पहुँचे हुये साधक समझे जाते थे इसी कारण इनका नाम मनीन्द्र जंभ करके भी प्रसिद्ध हुआ संत जंभा जी की लिखी हुई कोई पुस्तक अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है । परंतु इनके फुटकर कवित्त और कतिपय रचना कुछ संग्रहों में बिखरी हुई पाई जाती है । इन्होंने राजस्थान से भी बाहर जाकर उपदेश दिये थे। इन्होंने अपनें द्वारा प्रर्वतित मत का नाम 'बिश्नुई' मत और संप्रदाय का नाम 'विश्नुई ' संप्रदाय रखा। परंतु संत साहित्य में ऐसी किसी परंपरा का विवरण नहीं मिलताहै । न ही उनके अनुयायिओं का विशेष परिचय पाया जाता है । मात्र इतना पता चलता है कि राजस्थान के अतिरिक्त बिजनौर , बरेली व मुरादाबाद में इनकी परंपरा के कुछ लोग अभी भी विद्यमान हैं। इनके जीवन काल के शिष्यों में हावली, पावजी, लोहा पाठल, दत्तनाथ, एवं मालदेव आदि के नाम लिये जाते है । जो बहुतकुछ नाथपंथी ही मालूम होते हैं । । इनकी उपलब्ध रचनाओं में हमें वस्तुतः देहभेद, योगाभ्यास, कायासिद्ध जैसे विषय अधिकतर पाये जाते है । फिर भी इन सब को देखने से यह प्रतीत होता है कि ये संत मत के अनुयायी थे । जनश्रुति के अनुसार जंभा जी का देहान्त संवत 1580 विकमी के

लगभग हुआ। इन्होंने तालबा वीकानेर में समाधि ली थी । यहाँ साल में दो बार मेला लगता है ।

संत फरीदः– ये बहुत बड़े फकीर थे । इनकी बहुत सी रचनाएँ सिक्खों के पवित्र आदि ग्रंथ में संग्रहित हैं । इन्हें कई पदवियॉ भी मिली थी जैसे 'फरीदसानी' 'शेख फरीद' ब्रह्मकल' 'बलराज' शेख ब्रह्म साहब ' 'शाह ब्रह्म' आदि नाम से जानी जाती थी और कहा जाता है कि इन्होंने कई चमत्कार किये थे । इनकी मृत्ये सं. 1552 में हुई थी इनके दो लड़कों का नामोल्लेख मिलता है । इनके अनेंक शिष्यों मे से शेख सलीम चिस्ती , फतेहपुरी का नाम प्रसिद्ध है । इनके शिष्यों की संख्या आधी दर्जन से कम न होगी –38। इनकी समाधि सरहिंद में अभी तक वर्तमान है –39। फारसी के इतिहासकारफिरिस्ता का कहना है कि जिस समय तैमूरलंग सन् 1318 में पंजाब प्रान्त के नगर अधोजन पहॅचा था । उस समय वहॉ की गद्दी पर संत शेख फरीद का पोता विद्यमान था । एवं वह भटनेर के कई निवासियों के साथ बीकानेर भाग निकला । वहाँ जाकर उन लोंगों ने तैमूर लंग के साथ संधि कर ली –40। पाक पत्तन की इस मूल गद्दी के संस्थापक बाबा फरी थे जिन्हें शेख फरीदृदनीन चिस्ती भी कहा जाताहै । उनको जन्म संवत 1230 में पंजाब प्रान्त के कोठीवाल गॉव में हुआ था। वह शेख मुइनुद्दीन चिस्ती के उक्त शिष्य थे । उन्हें मांट गुमरी जिले के अधोजन गॉव में जो सतल नदी के किनारे डेरा गाजीखा डेरा इस्माईल खॉकी ओर जाने वाली सड.क की मोड़ पर बसा हुआ था वहां लगभग बारह वर्षो तक रहकर तप किया था । उस कारण वह गॉव उनकी साधनो द्वारा पवित्र पत्तन के नाम से प्रसिद्ध हुआ –41। उस समय सूफियों में अनेक प्रचारक अनें प्रचार कार्य में लगे हुए थे । बाबा फरीद नें भी देहली मुलतान आदि नगरों की यात्रा करके उन्हें अपना सहयोग प्रदान किया । फिर उनका विशेष प्रभाव दक्षिण , पश्चिम पंजाब में ही पड़ा । उन्होंने फारसी, पंजाबी एवं हिन्दी मे अनेंक कविताएँ रची और नीच जाति वाले हिन्दू लोगों को मुसलमान भी बनाया ।

उनकी मृत्यु संवत 1322 में हुई थी।

<u>शेख फरीद व गुरु नानक देव :–</u>शेख फरीद उन्हीं बाबा फरीद के वंशधर थे। उनके ही नामानुसार इन्हें 'फरीद सानी' अर्थात द्वितीय फरीद कहा जाता है । सिक्ख गुरुनानक देव के संबंध में लिखी गई प्राचीन साखीओं से यह ज्ञात होता है कि जिस फरीद के साथ उनकी भेंट हुई थी वहीं शेख फरीद व शेख ब्राह्मण थे । शेख फरीद के नाम से जो पद इस ग्रंथ में संग्रहीत है वह निश्चित रुप से शेख फरीद की रचनाएँ हैं –42। उक्त पदों की सख्या केवल चार है । गुरु नानक यात्रा से लौटते समय दक्षिण की ओर गए थे । यहाँ उनकी सिक्ख इब्राहीम से भेंट की भी चर्चा मिलती है –43। शेख इब्राहीम का एक शिष्य जिसका नाम शेख कमाल था था। जो एक बड़ा योग्य ब्यक्ति था। गुरु नानक देव तथा शेख इब्राहीम के बीच इस दूसरी बार भी कई प्रश्नोत्तर हुए–44। क्षिति मोहन जी के कथनानुसार इनकी कुछ रचनाएँ किसी शंकर दास साधू के पास सुरक्षित एक संग्रह में पाई जाती है –45। 'आदि ग्रंथ' में संग्रहित उक्त रचनाएँ शेख फरीद की कृत है। । मेकालिक साहब ने इस शब्द को इब्राहीम का उपनाम बतलाया है और कहा जाता है कि ये अपना उक्त नाम अपेनं सम्प्रदाय के मूल प्रर्वतक बाबा फरीद की स्मृति में रख लेते थे । यही परंपरा आने वाले गुरुओं के संबंध में भी लक्षित होती है । फरीद के कथनानुसार जब तक नेखों के दो दीपक जलते रहते है उसी समय मृत्यु का दूत आकर शरीर पर बैठ जाता है वह इस शरीर रुपी दुर्ग पर अपना हक जमा लेता है व इसमें सुरक्षित आत्मा रुपी अमूल्य धन को लूट लेता है –46। वे पुनः कहते हैं कि मैने उन ऑखों को देखा है जो काजल की एक रेखा तक भ सहन नहीं करती थी अफसोस उन्ही ऑखों पर बैठ कर पक्षी उधम मचाने लगे–47। सब इसी अग्नि में जल रहे है –48। सृष्टि कर्ता सृष्टि के भीतर विद्यमान है और सृष्टि उस भगवान में अंतनिहित है , जब उसके बिना दूसरी कोई वस्तु नही है तो फिर किसे ऊँच या नींच समझा जाये –49। शेख फरीद की कथन शैली सूक्तिओं

का अनुसरण करती है ।

संत सिंगा जी:—संत सिंगा जी खजूर गॉव के निवासी थे इनका जन्म सं. 1576 की वैशाख सुद एकादशी को हुआ था इनके पिता का नाम भीमागौली और माता का नाम गौरबाई था। इनका प्रारंभिक जीवन बछे कष्ट से बीता । इनके जन्म के पॉच—छः साल बाद ही इनके पिता दूसरी जगह रहनें चले गये । संवत 1598 में इन्होंने राव साहब के यहॉ नौकरी कर ली । संत सिंगा जी बचपन से ही संसार से विरक्त रहा करते थे । एक बार वे हरसूद से वामगढ़ की ओर जा रहे थे इन्हें मार्ग में ब्रह्मगीर के शिष्य मनरंगीर का गाना भी सुनना पड़ा। उस गाने से इनके हृदय पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा । उसी समय ये घोड़े से उतर कर मनरंगीर के चरणों में गिर गये । यहीं सें उनका आध्यात्मिक अभ्युदय प्रारंभ हुआ । भामगढ़ आकर इन्होंने राव साहब की नौकरी छोड़ दी । एवम् उनके वेतन बढ़ाने आदि प्रलोभनों को ठुकरा दिया। पिपल्या के जंगल की ओर चल दिये वहॉ ये निर्गुण ब्रह्म उपासना में सदा लीन रहने लगे ।इसी अवस्था में इन्होंने अनहद नाद संबन्धी 800 भजनों की रचना की । इनका दृढ विश्वास था कि प्रभू को बाहर ढूँढने के बजाये अपनें हृदय में ही सच्चे प्रेम का अनुभव चाहिए। संत सिंगा जी 40 वर्ष की अवस्था में कुछ ही अधिक दिनों तक जीवित रहे । कहा जाता है कि एक बार कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर अपनें गुरु मनरंगीर जी के सेवा में लगे हुए थे उसी समय इन्हें आज्ञा हुई कि मुझे नींद लग रही है मै सोने जा रहा हूँ । जन्म के समय मुझे आधी रात को जगा देना । सिंगा जी उनके जागने की बात भलीभॉति नहीं समझ सके । गुरु को न जगाकर स्वयं ही आरती पूजा कर डाली । जब मनरंगीर जगे तो इनपर बड़े रुष्ट हुए इन्हें कहा कि मुझे अपना मुँह मत दिखाना। सिंगा जी को यह बात लग गई । और शरीर त्यागने का निश्चय कर लिया । पिपिल्या वापिस आकर ये केवल नै महीना ही जीवित रहे । अंत में संवत 1616 में श्रावण शुक्ल नवमीं को इन्होने समाधि ली। कहा जाता है हाथ में कपूर लेकर एक गड्ढे में प्रवृष्ट

होकर समाधि लगाकर बैठ गये । इनके शरीर त्यागनें पर गुरु मनरंगीर बहुत दुखी हुए । इनकी समाधि किन्कर नदी के किनारे आज भी विद्यमान है यहाँ प्रति वर्ष आश्विन में मेला लगता है । इस मेले में लाखों की भीड़ जमा होती है । इनके रचित 800 भजन आज भी निमाडी भाषा में लिखे हुये पाए जाते है । अभी तक इनकी सारी रचनाएँ प्रकाशित रुप में देखने को नहीं मिलती है। इनकी एक छोटी सी पुस्तक सुकुमार पगारे नाम के किसी सज्जन सिंगा जी साहित्य शोधक मंडल खंडवा के मंत्री के हैसियत से प्रकाशित की थी । सिंगा जी के अनुयायिओं का नाम प्रायः कम सुनने को मिलता है । परंतु इनके पौत्र दलुदास की चर्चा सुनने को मिलती है ।

संत दलुदास जी महान संतो की कीर्ती का प्रचार किया करते थे । इन्होंने अपने दादा के पदों में प्रतिबिम्बवत दार्शनिक विचारों को जनता तक पहुँचाया।

संत भीषण जीः– इनके संबंध में बहुत कम पता चलता है । " दि सिक्ख रिलिजन नामक' पुस्तक के छठें भाग में इनको काकोरी, का शेख भीषन, बताया जाता है । इनकी मृत्यु अकबर के शाशन काल में प्रारंभ हुई । इतिहास कार बदायूनी के अनुसार ये लखनऊ सरकार के काकोरी नगर के निवासी थे जो अपनें समय के बहुत बड़े विद्वान थे । धर्म शास्त्र के महान पंडित व पवित्र आचरण वाले पुरुष थे । बहुत लंबे समय तक इन्होंने शिक्षक का कार्य किया । सात प्रकार के पाठों के अलावा इन्हें सम्पूर्ण 'कुरान' भी कंठस्त था जिससे वे उसका उपदेश भी देते थे । वे अपनें को इरीज के सैयद इब्राहीम की शिष्य परंपरा में समझते थे सूफी मत के रहस्यों को साधरण जनता के सामने प्रकट नहीं करते थे वे सिर्फ जिज्ञासुओं की ही एकांत में बताते थे और खुदा की वहदीयत का रहस्य जनता में प्रकट करने को कहते थे । इन्हें कई सन्ताने हुई जो सच्चरित तथा ज्ञान बुद्धि–सम्पन्न थी । शेख की मृत्यु सन् 1573–74 ई वा सं. 1630 –31 में हुई थी–50।

मेकालिक का कहना है कि जिस किसी ने भी आदि ग्रंथ में सग्रहीत पदों को लिखा है ,वह एक धार्मिक पुरुष होने साथ–साथ उस समय की सुधार संबन्धी योजनाओं से प्रभावित अवश्य रहे । अनुमान है कि वह भीषन कबीर का ही अनुयायी रहा होगा–51 । इनकी भाषा सीधी–साधी किन्तु मुहावरे दार है । इनकी वर्णन शैली भावपूर्ण होती हुई भी प्रसाद गुण के कारण अत्यन्त सुंदर एवं आकर्षक है । इनकी रचनाओं में नाम का महत्व, गुरु की महिमा, एवं हरि के प्रति प्रदर्शित प्रेम व तन्मयता के भाव इनकी विशेषता प्रकट करते हैं । ये सरल हृदय होने के कारण अपनीं शक्ति हीनता के प्रदर्शन व आत्म निवेदन की ओर अधिक प्रवृत्ति जान पड़ता है । इनके पदों के विषय हरिनाम जो निर्मल व अमृत जल है और जो संसार के लिये सबसे अमूल्य पदार्थ है गुरु कृपा से ही वह प्राप्त हो सकता है इसकी सहायता से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । जिस प्रकार कोई गूँगा मनुष्य मिठाई के माधुर्य के स्वाद का वर्णन करने में असमर्थ रहता है । उसी प्रकार हरि के गुणों का वर्णन संभव नहीं है । जिह्रा से कहने कानों से सुनने और मन में उसे समझनें से सुख उत्पन्न होता है । नेत्र जहाँ कहीं भी जाते हैं वहां उसी का अनुभव करते है। ।

गुजरात के प्रमुख संप्रदायः–गुजरात के प्रमुख संप्रदायों में गोरख संप्रदाय , शाक्त संप्रदाय, नाथसंप्रदाय, अच्यूत संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय, आदि प्रमुख हैं । जिनमें अनेंक छोटे मोटे पथों एवं संप्रदायों का विकास हुआ है ।

1:– गोरख संप्रदायः– मध्यकालीन धर्मसाधना में गोरखसंप्रदाय एक मात्र पूर्ण शैव साधना के रुप में उभर कर आया है । इस संप्रदाय के मूल प्रर्वतक साक्षात शिव है । यह सहजयान और वज्रयान का विकसित रुप है । इसी संप्रदाय में कौल संप्रदाय कापालिक और हठवादी योग संप्रदाय का जन्म हुआ। मध्य युग में प्रचलित लवकुलीश, कापालिक नाथ, गोरक्षनाथी, रसेश्वर आदि पशुपत शैव तथा तमिल , काशमीर वार, आदि शैवों का प्रचार फेला पाया गया था–52।

लवकुलीश मत गुजरात में प्रचलित हुआ। गुजरात में झारपट्टन में एक लवकुलीश मूर्ति भी पाई गई है । माध्वाचार्य के अनुसार इनकी सभी चीजें पाशुपातों के समान है। । केवल ये भस्म के बदलें सिकता में स्नान करते है।, ये मुख्य भेद है–53। सोलकी काल दरम्यिान लकुलीश धर्म राज्य द्वारा प्रतिष्ठित था तथा लकुलीश पाशुपताचार्य को शिव का अवतार माना जाता था। इनका जन्म लाट देश में नर्मदा तट पर कारावण कायावरोहण में हुआ था । इसी लिये शैवों के लिये नर्मदा गंगा के समान पवित्र है –54।

2:– नाथ संप्रदायः– नाथ संप्रदाय का प्रभाव कच्छ और गिरिनार में विशेष रुप से रहा है । कच्छ की उत्तरी सामा पर स्थित धीणोधर पर्वत प्राचान काल से अनेक सिद्धों , नाथों साधकों तथा योगी–महात्माओं का साधन धाम रहा है जिस प्रकार कच्छ का 'काला पर्वत' दत्तात्रेय के चरण–चिन्ह को लेकर प्रसिद्ध है उसी प्रकार से धीणोधर पर्वत दाद धोरमनाथ की दीर्घ तपस्या के कारण प्रसिद्ध है । दादा धोरमनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसिद्ध शिष्यों में से एक थे । ये उत्तर प्रदेश से सौराष्ट्र होते हुये कच्छ में पधारे तथा सर्व प्रथम इन्होंने मांडवी बन्दरगाह के पास रियाण पट्ट में धूनी रमाई थी । इनका आगमन कच्छ के आठवीं शताब्दी के आस–पास माना जाता है –55। कच्छ में इन गोरख नाथी साधुओं को पीर कहकर संबोधित किया जाता है । अन्य संतों में शरणनाथ जी, गरीबनाथ जी, तथा कंथडनाथ जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन संतो की वाणी का संग्रह उपलब्ध नहीं होता , गोरखनाथ के कुछ पद अवश्य मिल जाते हैं । जिस प्रकार संत कबीर की वाणी गुजराती संतों से मिलती है । गुजरात के संत साहित्य पर गोरखपंथ का निम्न प्रभाव देखा जा सकता है ।

अः– काम की घोर निन्दा तथा सदाचरण की प्रवृत्ति। ब्रह्मचर्याचरण पर विशेष भार।

बः– कथनी एवं करनी की समानता पर बल।

कः– इन्होंने गोरख पंथ के नैतिक एवं सामाजिक पक्ष को जितना अपनाया

उतना साधना पक्ष की कष्ट साध्य एवं दूरुह प्रकिया को नहीं।

खः– मत्स्येंद्रनाथ की भाँति गुजरात के संतों ने मनः साधना पर विशेष भार दिया है ।

<u>3:– अच्युत सम्प्रदायः–</u> ईसा की तेरहवीं शती में महाराष्ट्र में इस सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ और धीरे –धीरे यह गुजरात, पंजाब, तथा काबुल तक फेल गया। यह सम्प्रदाय अनेक नामों से अभिहित किया जाता है । महाराष्ट्र में यह महात्मा पंथ, गुजरात में अच्युत संप्रदाय और पंजाब में जयकृष्णी पंथ कहलाता है –56। महात्मा चक्रधर इस पंथ के प्रवर्तक थे। जो कि मूल गुजरात के निवासी थे । इस पंथ की विशेषतायें निम्न प्रकार है।

अः– ज्ञान के बजाए इन्होंने भक्ति को अधिक महत्व दिया , इनकी मान्यता है कि निराकरण ईश्वर भक्तों पर अनुग्रह रखने के लिये साकार रुप धारण करता है ।

आः– इन्होंने कृष्ण भक्ति को अपनाया किन्तु इन पर नाथपंथ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । इन्होंने नाथों के समान स्त्रीदर्शन को निषिद्ध ठहराकर नैतिक–चरित्र पर बल दिया एवं साथ ही साथ जाति–पाँति के बन्धन को भी अस्वीकार कर दिया।

इः:– दर्शन क्षेत्र में जीव, देवता, प्रपंच, परमेश्वर इन चारो पदार्थों को अनादि माना है जीव कर्मो का भोक्ता है । तथा उसे मोहपाश में फंसाने वाली माया है। जीव को इस संसार से मुक्त करने का सामर्थ्य देवताओं में भी नहीं है , ईश्वर (समय का सद्गुरु) ही मोक्ष प्रदान कर सकता है ।

ईः– यह पंथ द्वैतवादी होते हुये भी बहुदोवोपासना का पक्षपाती नहीं है । यह वेदों में विश्वास नहीं करता अतः यह अवैदिक मत है । लिंगायत मत में कुछ साम्यता भी पाई जाती है–57।

<u>4:– रामानन्द संप्रदायः–</u> ये संप्रदाय श्री रामानंदी और रामावंत सम्प्रदाय के

नाम से प्रसिद्ध है । कुछ लोगों की मान्यता अनुसार ये तीनों सम्प्रदाय भिन्न है । इस सम्प्रदाय के कुछ अनुयायी अवधूत और कुछ वैरागी कहलाते है। इन दोनो साधूओं में भेष भूषा और मान्यतादि सम्बन्धी अन्तर है –58। स्वामी रामानन्द युग प्रर्वतक आचार्य थे । इन्होंने अपनीं विचारधारा में समस्त मध्यकालीन भक्ति धारा को अग्रसर किया था। निर्गुण काव्य धारा में रामानन्द का स्थान सर्वोपरि है । इनके बारह शिष्यों में से अधिकांश की विचार धारा निर्गुण परक थी । इस निर्गुण काव्य धारा की नींव स्वामी रामानन्द ने डाली । उस पर विशाल एवं मजबूत भवन बनाने का कार्य उन्हीं के शिष्य कबीर नें किया था । इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि –

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नवखंड।।'

चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शती की समस्त उत्तरी संत परंपरा जहाँ रामानन्द से प्रभावित है , उसी परम्परा की एक अक्षुण्य धारा गुजरात की ओर प्रवाहित होती दिखाई देती है –59।

स्वामी रामानुज तथा निम्बार्क ने भागवत् धर्म की प्रतिष्ठा कर इसका व्यवस्थित स्वरुप प्रदान किया । इसके पश्चात रामानन्द हुए जिन्होने संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत भाषा में धर्मोपदेश देकर सर्वसामान्य के लिए भक्ति के द्वार खोल दिये गये । इस तरह उन्होंने पुरानी जर्जर परम्पराओं को तोड़ा तथा स्वतन्त्र मार्ग का सर्जन कर भक्ति की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने का सबसे सबल प्रयत्न किया । स्वामी रामानन्द के शिष्यों ने इसी राम भक्ति का प्रचार गुजरात के एक छोर से दूसरे छोर तक किया। स्वामी रामानन्द की दिग्विजय यात्रा में , 'गुजरात का विशिष्ट उल्लेख मिलता है –60। उन्होंने स्वयं द्वारका , सिद्धपुर गिरनार और आबू आदि विभिन्न स्थानो का भ्रमण कर अपनें मत का प्रचार किया था –61।

<u>5:– कबीर संप्रदाय:–</u>'कबीर वड' जोकि नर्मदा के तट पर आज भी मौजूद हैं

उसे लेकर एक क़िंवदन्ती सर्वप्रसिद्ध है कि कबीर अपनें मत का प्रचार करने के लिये गुजरात आए थे । कबीर साहब के कुछ भजन गुजराती भाषा में लिखे भी उपलब्ध होते हैं , किन्तु इनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है । आ. परशुराम चतुर्वेदी–62, तथा क्षिति मोहन सेन –63, ने कबीर के गुजरात एवं सौराष्ट्र के भ्रमण का उल्लेख किया है । कुछ लोग कबीर के पुत्र कमाल द्वारा गुजरात में कबीर मत का प्रचार का उल्लेख करे हैं–64। गुजरात का समस्त संत साहित्य कबीर से प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों रुपों से प्रभावित है । गुजरात का ऐसा कोई गॉव शेष नहीं जहॉ कोई कबीर मंदिर तथा कबीर मतावलम्बी न पाया जाता हो । गुजरात में कबीर पंथ की एक सुदीर्घ परम्परा अब तक चली आ रही है । ये दो संप्रदायों का नाम विशेष रुप से लिया जाता है –65।

अः– राम कबीरिया संप्रदायः

आः– संत कबीरिया संप्रदाय

अः– कबीर को राम का अवतार मानने वाले राम– कबीरिया पंथ में दीक्षित भगवा वस्त्र पहनते हैं इसके मूल प्रर्वतक के रुप में कबीर के शिष्य पद्नाभ का नाम लिया जाता है । इस संप्रदाय के लोग सिर पर टोपी लगाते हैं गले में माला और कान में श्रवणी डालते हैं । कहा जाता है कि पद्नाम के शिष्य नीलकंठ ने इसे दीक्षा प्राप्त कर गुजरात तथा काठियावाड़ की ओर यात्रा की थी –66।

आः– धर्मदासी परम्परा के अनुयायी अपनें गुरु की तस्वीर अथवा मन्त्र देने वाले गुरु की पूजा करते हैं । इस मत के अनुयायिओं को सतकबीरिया कहते है। कबीर– आश्रम जामनगर की गुरु–प्रणालिका का सम्बन्ध धरमदासी परम्परा के साथ जोड़ा जाता है –67।

<u>6:– दादू–सम्प्रदायः–</u> दादू सम्प्रदाय को परब्रह्म संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है । इस संप्रदाय के प्रर्वतक सन्त दादू दयाल थे जिन्होंने कबीर के समान देश देशान्तरों का पर्यटन कर अपने मत का प्रचार किया था। दादू

सम्प्रदाय के देशभर में 52 महत्वपूर्ण अखाड़े हैं । इनकी अधिकांश संख्या जयपुर, अलवर , मारवाड़ ,बीकानेर ,मेवाड़, पंजाब और गुजरात में पाई जाती है । काशी में भी इस संप्रदाय का एक अखाड़ा है । यह संप्रदाय दो शाखाओं में विभक्त है ।

<u>अः— भेषधारी विरक्त साधूः—</u> जो गेरुआ वस्त्र धारण कर भजन और पाठ करते हैं । इन वैरागिओं के पॉच भेद माने गये है :— खालसा , नागा , उत्तरादी, विरक्त और खाकी ।

<u>बः— सेवक साधूः—</u> जो सफेद वस्त्र धारण कर खेतीवाड़ी फौजी नौकरी और वैद्यकी आदि करतें है। तथा कुछ सूद पर रुपये आदि चलाते हैं ।

दादू सम्प्रदाय कबीर सम्प्रदाय और नानक (खालसी) संप्रदाय की तरह व्यापक और महत्वपूर्ण है । इन तीनों में निम्नानुसार अन्तर है ।

1:— कबीर पंथी माथे पर तिलक लगाते है और गले में कंठी पहनते है , व दादू संप्रदाय वाले इसके विरुद्ध सिर पर टोपी या मुरायठ पहनते हैं , जबकि खालसा पंथी सिर पर पगड़ी पहनते हैं 'सत श्री अकाल' कहकर अभिवादन करते हैं । जबकि दादू संप्रदाय वाले भी सत्तराम कहकर अभिवादन करते है।

2:— कबीर में खण्डन की प्रवृत्ति है , जबकि दादू की वाणी व नानक में इसका पूर्णतः अभाव है। इनके उपदेश के विषय थे —

1:— परमेश्वर की उपासना और अजपाजाप

2:— मनः संयम के साधन

3:— परमेश्वर का सच्चिदानन्द स्वरुप

4:— भगवान के परम रुप का ध्यान और धारणा

5:— अमृत—बिन्दु का पान

6:— ब्रह्म का साक्षात्कार

7:— अनहद—बाजा में निमग्न होना

8:— निराकारोपासना

इस दादू संप्रदाय की प्रमुख गद्दी नराणा में थी जो कि राजस्थान में है । यहाँ प्रतिवर्ष बहुत विशाल मेला लगता है और दादू की रखी हुई खड़ाऊँ की भी पूजा की जाती है । कबीर पंथ का जोर सर्वत्र विशाल रहा गुजरात में जितना कबीर पंथ पर का जोर है उतना दादू पंथ का नहीं । दादू ने हिन्दी के साथ –साथ गुजराती में भी रचनाएँ की । दादू के अनुयायिओं का अपनें सतगुरु की जन्म भूमि–गुजरात और वहाँ की भाषा के प्रति सहज आर्कषण रहा है ।

7:– प्रणामी संप्रदाय:– कबीर पंथ के अलावा सभी सम्प्रदायों में प्रणामी सम्प्रदाय का गुजरात में सर्वाधिक महत्व रहा है । इस संप्रदाय के संस्थापक निजानन्दादाचार्य श्री देवचन्द्र थे जिनका जन्म संवत. 1638 आश्विन शुक्ला चतुर्दशी मानी जाती है –68 । इनका जन्म उमरकोठ (मारवाड़) तथा विलोपन जामनगर में हुआ था ।इनके पिता का नाम मतुमेहता तथा माता का नाम कुँवर बाई था सं. 1655 में इन्होंने कच्छ की ओर प्रयाण किया तथा ज्ञान की भूख को मिटाने के लिए तथा ब्रह्म साक्षात्कार की उत्कृष्ट अभिलाषा में इन्होंने वहाँ के दत्त सम्प्रदाई एवं कनफटा योगियों से दीक्षा ली किन्तु फल कुछ नहीं मिला अन्त में स्वामी श्री हरिदास से गुरु मन्त्र लेकर तारतम्य प्राप्ति की –69 । प्रणामी मतानुयायिओं के अनुसार पूर्ण ब्रह्म की शक्तियों को माया से छुडाने के लिए तथा उन्हें जाग्रत करने के लिये श्री कृष्ण ने अपनी अजंगा श्री श्यामा जी को श्री देवचन्द्र जी के रुप में भेजा था –70 ।

इन्होंने जामनगर में प्रणामी धर्म पीठ की स्थापना सं. 1687 में कार्तिक मास में की जो आज भी 'खिजड़ा मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है । इस संप्रदाय के प्रचार प्रसार एवं निर्माण का सारा श्रेय स्वामी प्राणनाथ जी को जाता है जो वर्ष की अवस्था से ही इस संप्रदाय में दीक्षित हो गये । प्रणामी संप्रदाय को धामी संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है । इस सम्प्रदाय के अनुयायी स्वयं को

मूलतः ब्रह्मधाम का निवासी तथा ब्रह्म शक्तियों का स्वरुप समझते हैं अतः वे जब परस्पर मिलते है। तो वे इसी वास्तविक रुप को ध्यान में रखकर 'प्रणाम' करते हैं । स्वामी प्राणनाथ नें इस मत के प्रचार एवं प्रसार में गुजरात , मेवाड़, मारवाड़, मालवा, होते हुए उत्तर–भारत की यात्रायें की जहॉं इन्होंने दो संस्कृतिओं के बीच होने वालो अमानवीय संघर्षो को देखा अतः साम्प्रदायिकता की इस अमानवीय विषम भावना को दूर करनें के लिये भारतीय एवं विजातीय भावनाओं का ऐसा अपूर्व समन्वय किया जिसमें न वेश भूषा का प्रश्न था और न वर्ग –संघर्ष का सवाल था । कबीर ने तो हिन्दू–मुस्लिम एकता की जहॉं बात की वहॉं प्राणनाथ ने तो कुरान, गीता, बाइबिल, एंजिल, तथा जोन्दोवास्ता की समानता की लोगों को जिस एकात्मवाद का संदेश दिया उसी ने आगे चलकर रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिल सोसाइटी प्रभृति संस्थाओं के प्रणयव में नींव का काम किया।

गुजरात में प्रणामी पंथ के प्रायः पचास से भी अधिक मन्दिर है। इन मंदिरों में मुरली, मुकुट और स्वामी प्राणनाथ विरचित 'श्री मुख वाणी' की पूजा होती है इस पंथ की मुख्य गदि्दयॉं पन्ना नवटन पुरी और सूरत में है । स्वामी देवेंद्र जी के पश्चात जामनगर की गद्दी 'गृहस्त गद्दी' एवंम् सूरत की गद्दी 'फकीरी गद्दी कहलाई । गृहस्त गादी के अधिकारी स्वामी देवचन्द्र के पुत्र बिहारीलाल थे जबकि सूरत की फकीरी गादी स्वामी प्राणनाथ से शुरु हुई ।

<u>8:– सूफी संप्रदाय:–</u> भारत वर्ष में इस्लाम धर्म का प्रवेश आठवीं मे हुआ। सिंन्ध तथा पंजाब का हिस्सा इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार का प्रमुख केंद्र बन गया। तेरहवीं – चौदहवीं शती में मुस्लिम धर्म प्रचारकों और सूफिओं का जोर शोर पूरे देश के विभिन्न भागों में फैल गया। बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में जब मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया उस समय उच (बहावल पुर) में इस्लामी विद्या का बहुत बड़ा केंद्र था। यहीं से सिन्ध गुजरात और दक्षिण

पश्चिमी पंजाब में इस्लाम धर्म का प्रचार हो रहा था । इसके पश्चात यहाँ पर कई सूफी साधक आये –71।

डॉ रामकुमार वर्मा ने सूफी धर्म का प्रवेश ईसा के बारहवीं शताब्दी में माना है तथा इसके प्रमुख चार सम्प्रदायों का उल्लेख किया है जो समय समय पर देश में प्रचारित हुए–72।

1:– चिश्ती–सम्प्रदाय– सन् बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

2:– सुहरावर्दी सम्प्रदाय– सन् तेरहवीं शताब्दी का पूवार्ध

3:– कादरी सम्प्रदाय– सन् पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

4:– नवशाबंदी सम्प्रदाय– सन् सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

ये चारों सम्प्रदाय अपनें मूल सिद्धांतो के समान थे। धार्मिक और सामाजिक पक्षों में ये सभी सम्प्रदाय अत्यंत उदार थे –73। इनमें सामाजिक एकता और समानता पर विशेष बल दिया है । हजारों और लाखों की संख्या में हिन्दू धर्म के विविध वर्गों से असंतुष्ट सदस्य सूफी सन्तों के चमत्कारों से प्रभावित होकर और उनकी सात्विकता और सहिष्णुता से आकर्षित होकर इस्लाम धर्म के अर्न्तगत सूफी संप्रदाय में दीक्षित हुए परिणाम स्वरुप भारत में मुसलमानों की संख्या बरसाती नदी की भाँति बढ़ती गई –74। कहा जाता है कि कच्छ और गुजरात में पीरान के इमामशाह ने इस्लाम धर्म में बहुतों को दीक्षित किया। कच्छ में ऐसे लोग शाह पीर की पूजा करते हैं –75। गुजरात की बोहरा जाति अब्दुल्ला को अपना प्रथम धर्म प्रचारक मानती है । ईसा की बारहवीं शताब्दी में पर्सिया का इस्लामी धर्म प्रचारक आभूत नूर सतानगर अथवा नूर सौदागर सिद्धराज के काल में आया था जिसने गुजरात की निम्न हिन्दू जाति कणवी, खरवा, कोरी आदि को मुसलमान बनाया था ।

अजमेर के प्रसिद्ध सूफी सन्त ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (मृत्यु सन् 1236) का नाम विशेष रुप से लिया जा सकता है जिनकी शिष्य परंपरा गुजरात तक फैली हुई प्रतीत होती है । अनवर और सत्ताशाह चिश्ती

इसी परम्परा की कड़ियाँ है । इसी तरह सत्तारी सम्प्रदाय के अर्न्तगत ग्वालियर के शाह मुहम्मद गौस के शिष्य एवं उत्तराधिकारी वज़ीरुद्दीन का नाम गुजरात के सूफिओं में अत्यन्त आदर पूर्वक लिया जाता है । भारत में इसके प्रर्वतक फारस के अब्दुल्ला सत्तारी थे । इस सम्प्रदाय के सन्त बादरी सम्प्रदाय वालों की तरह वस्त्र धारण करते हैं तथा चिश्ती और कादरियों के साथ 'बेनवा' कहे जाते है । –76 ।

<u>9:– सम्प्रदाय–</u> महाराष्ट्र में इसका पुनरुद्वार पन्द्रहवीं शती में हुआ। दत्त त्रिमूर्ति देवता है जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश का सम्मिलन है । जिन्होंने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की । इस सम्प्रदाय के अर्न्तगत अद्वैत की प्रतिष्ठा सगुण साधना की नींव पर की गई है । जिसमें लोक–विरह आचार–पालन का निषेध और योग मार्ग को ग्रहण करने का निर्देश किया गया है । गुजरात में इस सम्प्रदाय का आगमन श्री वासुदेवानन्द सरस्वती द्वारा हुआ जिनके शिष्य रंग अवधूत ने नारेश्वर में दत्त आश्रम की स्थापना कर दत्तोपासना का प्रचार एवं प्रसार किया ।

<u>10:– रामस्नेही संप्रदाय:–</u> संवत 1798 में जोधपुर के स्वामी रामदास –77,ने राम स्नेही पंथ – की स्थापना की जिसका प्रभाव गुजरात में भी देखा जाता है । यह मत मुसलमानी मत से बहुत कुछ मिलता है । इसके अंतर्गत मूर्ति पूजा को कोई स्थान नहीं । नमाज की भाँति दिन में पॉच बार निराकार ईश्वर की आराधना होती है । इसमें जॉति पॉति का कोई भेद–भाव नहीं होता परंतु सदाचार पर विशेष भार दिया गया है –78। गुजरात में राम सनेही ही अधिकतर अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, बलसार आदि स्थानों में पाये जाते है । ये गले में माला माथे में श्वेत तिलक धारण करते हैं । काठ के कमंडल में ये जल पीते है तथा मिट्टी के बर्तनों में ये भोजन करते है । जीव हत्या से ये परहेज करते है वर्षाऋतु में घर से बाहर जीव जन्तुओं के कुचले जाने की आशंका से बाहर नहीं निकलते है । अधिकांश इनमें मौनी होते है । इस सम्प्रदाय में

दीक्षित होने के लिये 40 दिन तक दीक्षा दी जाती है । पंथ में संगठन के लिये आरम्भ से ही 12 व्यक्तिओं का सम्प्रदाय चला आरहा है । इनमें से किसी की भी मृत्यु चली होते ही योग्य व्यक्ति को चयन कर इसकी पूर्ति कर दी जाती है । मुख्य महन्त की मृत्यु पर उत्तराधिकार के लिये एकत्रित गृहस्थों द्वारा योग्यता की दृष्टि से ही महन्त का चुनाव होता है और वह महन्त शाहबाद में रहता है –79। गुजरात के राम स्नेही सन्तों में समर्थदास (मृ. सं. 1993) का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है जिन्होंने 'ध्रुवचरित' जैसे बृहद काव्य की रचना हिन्दी में की थी। ये खैड़ापा के संत मनसुखदास की शिष्य परंपरा में आते है । राजस्थान में आये शाहपुरा रैण और खैडापा इस सम्प्रदाय के मुख्य केंद्र है ।

11:– अन्य सम्प्रदाय:–

अ:– अखा (प्रणालिका) संप्रदाय,

क:– निरांत संप्रदाय,

ब:– कुबेर संप्रदाय,

स:– ब्रह्मचारी आश्रम सम्प्रदाय,

ह:– श्रेय साधक अधिकारी वर्ग ,

अ:– अखा प्रणालिका संप्रदाय:–

कबीर की भॉंति अखा ने भी किसी संप्रदाय के प्रर्वतन के विरोधी थे इन्होंने अपनें समय काल के दरम्यान किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया –80। किन्तु इनके पश्चात कुछ ऐसे इनके अनुगामी हुए जिन्होंने अखा को शिष्य बताया और इस प्रकार परम्परा धीरे–धीरे विकसित होने लगी। अखा के शिष्यों के इस परंपरा का नाम अखा प्रणालिका रखा गया।

क:– निरांत संप्रदाय:– (सं. 1803–1908)

निरान्त द्वारा संस्थापित इस संप्रदाय के अर्न्तगत बापू साहब गायकवाड़, अर्जुनभगत, तथा गणपत राम आदि अपनें नाम का संप्रदाय चलाने के लिए शिष्यों के सोलह घरों में चरण–पादुकाएं अर्पित कर गद्दियॉं

प्रस्थापित की। बड़ौदा का निरांत मन्दिर सबसे बड़ा माना जाता है ।

निरांत शिष्य परंपराः–

1:–नरेरदास

2:–दयालदास

3:–गोविन्ददास

4:–मन्छाराम

5:– शामदास

6:–मायबाजी

7:–रणुमानजी

8:–माधवराम

8:–खुशालदास

9:–बाबाभाई

1:–बापूसाहब

2:–भीखाभाई

3:–रामदास वणारशीमा ' इनके पश्चात इनकी कोई गद्दी प्रस्थापित नहीं हुई ।'

4:–केशवदास

बः– कुबेर संप्रदायः–

इस सम्प्रदाय का नाम कैवल्यज्ञान– सम्प्रदाय अथवा कायम संप्रदाय भी है 'हंसातालेव' साम्प्रदायिक ग्रन्थ के अन्तर्गत 'कायम पंथ' की पुष्टि होती है –

" कायमपंथ हमारणा,कैवल का देदार।

सत् कुबेर है आगवा आगेने कोई यार" ।। – हंस तालेव, अंग 50/18

इस पंथ के प्रर्वतक (सं. 1826) कुबेरदास थे। इन्होंने अपनी मुख्य गद्या, आनन्द आनन्द के पास अवस्थित सारसा में प्रथापित की । इस संप्रदाय के कुल 52 मन्दिर है। इस संप्रदाय के मूल सिद्धांत

निम्नाकिंत है ।

1:– इनका 'केवल पद' सगुण पद और निर्गुण बेहद के कीचड़ से परे अनहद पद का है ।

2:– विश्व आदि सर्जनहार एक 'केवलकर्त्ता' है । इस केवल पिता ने अपने शुद्ध संकल्प से सृष्टि के प्रारंभ काल में दो अंश सर्जित किए। 1:– निरंजन, 2:– परमगुरु। निरंजन अशं को उन्होंने सृष्टि के कार्य –क्रम में लगाया और परम् गुरु को भटकते जीवों को केवल स्वरुप के बोध कराने में प्रवृत्त किया।

डॉ. का. म. मुंशी ने कुबेर संप्रदाय को रामानन्द–संप्रदाय की एक शाखा ही माना गया है–81 ।

सः– ब्रह्मचारी संप्रदाय :–

यह कबीर पंथ की ही कोई प्रशाखा ज्ञात होती है। इसके संस्थापक संत महातम्यराम (सं. 1882–सं. 1945) जी थे। इनकी वाणी में भी उक्त संप्रदाय की निम्नांकित विशिष्टताएँ मिली है ।

1:– गुरुवत् पूजन।

2:– कबीर जी का अनेकशः उल्लेख।

3:– 'साहेब' शब्द का बाहुल्य,

4:– 'सत् रमेति राम' इनका मूल मंत्र है ,

5:– इनकी वाणी में अखा के बहुप्रयुक्त शब्दों का बार बार प्रयोग मिलता है ; इससे होता है कि इन पर अखा–प्रणालिका का परोक्ष प्रभाव भी अवश्य पड़ा था।

संक्षेप में इसका सम्बन्ध कबीर पंथ विशेषतः 'राम कबीरिया' के साथ जोड़ना अधिक संगत प्रतीत होता है । ब्रह्मचारी आश्रम की मुख्य गद्दी सामरडा मे है (जि. खेड़ा) संत महातम्य राम के प्रमुख शिष्यों में संत हरिराम भी थे, जो पहुँचे हूए संत थे और जिन्होंने पादरा में मंदिर का स्थापना की और

अपनें गुरु का उपदेश और स्वानुभूतिओं का बोध जनजीवन को कराया।

हः— श्रेय अधिकारी वर्गः—

संवत् 1636 के आस पास जबकि बंबई और अहमदाबाद में प्रार्थना समाज, आर्य समाज और थियोसोफिकल प्रभृति संस्थायें अपनें अपनें ढंग से हिन्दू—धर्म के शोधन में प्रवृत थी, उसी समय बड़ौदा में 'महाकाल' नामक मासिक—पत्रिका द्वारा हिन्दू तत्वज्ञान को जगत प्रसिद्ध करने का श्रेय प्राप्त करने वाली तथा योग के अनेकानेक चमत्कारपूर्ण प्रयोगों द्वारा अपना प्रभाव फैलाने वाली एक संस्था इस नाम से चल रही थी जिसके संस्थापक श्री नृसिंहाचार्य थे। ये अपने समय के श्रेष्ठ मौलिक विचारक थे। इनके संबन्ध में कर्नल आल्कोट ने एक बार कहा था।

" आई हैव कम अक्कोस मैनी संतस बट हैव नैवर सीन सच स्पीरिच्युल हालो ओन ऐनी अदर केस"

इन्होंने पारिवारिक जीवन शुद्धता एवं उच्चतर भूमिका पर योग की परिभाषा की । इस वर्ग में समाज एवं संसार सेवा की अपेक्षा कुटुम्ब सेवा पर विशेष रुप से बल दिया गया है और उसी को योग का प्रथम सोपान भी कहा गया है । परिणित जीवन को इन्होने उत्कृष्ट जीवन बताया इस वर्ग ने अपनीं रचनाओं द्वारा हिन्दी तथा गुजराती साहित्य को समृद्ध किया उपेन्द्राचार्य तथा छोटालाल मास्टर आदि श्रेय् साधकों द्वारा इसकी अभिवृद्धि हुई । शिक्षित वर्ग इस पंथ का विशेष अनुगामी है ।

जिस प्रकार भारत के विविध संप्रदाय किसी न किसी महापुरुषों के उपदेशों आदर्शों तथा जीवन यात्रा से जुडे हुए है व जिनसे उनकी शुरुआत हुई । उसी प्रकार सिख संप्रदाय को जन्म एवं स्फूर्ति देने का श्रेय आदि नानक को दिया जाता है । एवम् इनकी गणना भारत के कतिपय प्रसिद्ध महापुरुषों वल्लभाचार्य, रामानन्द, संत कबीर आदि के साथ की जाती है ।

गुरु जी ने बचपन में ही संस्कारवाद पर प्रहार किया । अपनीं पहली

यात्रा में कुरुक्षेत्र पहुँच कर ग्रहण काल में मांस पकाया था। जगन्नाथ पहुँचकर भगवान की आरती का रुप बदल दिया। इस आरती में मूर्ति में स्थित देवता का खण्डन नहीं बल्कि सर्वव्यापक प्रभुकी आरती का विधान है । गुरु जी ने सत्य व्यवहार पर बड़ा जोर दिया है । पग पग पर सच्चाई का लोप देखकर गुरु जी ने 'सच्च' को जीवन में अपनानें की प्रेरणा दी है । गुरु जी ऊंच नीच' अहंभाव का ऐसा घिनौला पहलू है कि जिसकी जितनी निन्दा की जाए कम है परन्तु जहॉ तक वैदिक समाज का प्रश्न है वह ऐसी मर्यादा है जो धर्म ? समाज? अर्थ तथा अनुशासन को जीवित जागृत रखती है ।

इस प्रकार गुरु जी ने एक नया दृष्टिकोंण जगत के सामने रखा। यद्यपि आर्ष एवं पौराणिक ग्रन्थों में इन्हीं सत्यों का प्रतिपादन है , तथापि जनता की भाषा में जनता तक इन विचारों को पहुँचाने का प्रश्न है वहॉ गुरु नानक देव जी को अक्षय श्रेय मिला। गुरु जी की रचना में जितना उनका धार्मिक पक्ष सहज–मधुर एवं सर्वजन–ग्राह है , वहॉं उनका 'काव्य पक्ष' भी अत्यंत सुदृढ एवं प्रभावशाली है । पंजाब के महाप्रभु जयदेव के पियुष–वर्षी कण्ठ में गीतिकाव्य की धारा का सुमधुर स्वर प्रस्फुटित हुआ कि वह एक साथ पंजाब गुरुपरिवार' गुजरात, उत्तरप्रदेश, 'कबीर' राजस्थान' मीरा, विहार 'विद्यापति' बेंगाल' चंडीदास' तथा महाराष्ट्र में गूँज उठा। इन तथा कथित पीयूषवर्षी संतो तथा भक्तों के गीतिकाव्य को देख कर ही विद्वानों नें भक्तिकाल को 'स्वर्णकाल' कहने का निश्चय किया है । यही गीति–साधना , गुरु–उपासना' का मुख्य अंग है ।

गुरुनानक के कुछ एक पद्यों में रहस्यवादी प्रेरणा देने वाले तत्त्व विद्यमान हो पर समूची नानक पद्धति 'रहस्यावाद' से परे की वस्तु है । जब तक परिभाषा–निबद्ध रहस्यवाद पोथियों में विद्यमान है । तब तक कबीर जायसी को प्रेम का प्रतीकोपासक माना जाता रहेगा । कबीर एक सीमित क्षेत्र के कवि होकर रह गए है । गुरु नानक रहस्यवाद के अलावाल में नहीं पले,

बल्कि वे उनमुक्त गगन में नक्षत्र की तरह उदय हुए।

डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी नानक की रचनागत विशेषताओं को लक्ष्य में रखते हुए लिखते है कि इनके भक्तों में त्याग भावना, कष्ट सहन करने की शक्ति और अपार धैर्य को देखा जाए , तो यह मानना पड़ेगा कि जैसी अद्‌भुद प्रेरणादायिनी शक्ति इनकी वाणियों ने दी है , वैसी मध्य युग के किसी अन्य संत की वाणियों नें नहीं दी है । इतिहास साक्षी है कि सिख भक्तों को दीवार में चिन दिया गया , फॉसी पर लटका दिया गया और जितने प्रकार की अमानुषिक पीड़ाएँ दी जा सकती है सब दी गई हैं फिर भी इन भक्तों ने निराशा या पराज्य का भाव नहीं दिखलाया। जिन वाणियों में कभी न समाप्त होने वाले बल साहस प्राप्त हो सकता है उनकी महिमा निःसंदेह अतुलनीय है । सच्चे हृदय से निकले हुए भक्त के उद्‌गार और सत्य के प्रति दृढ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते है , यह नानक वाणियों से स्पष्ट होता है । इस प्रकार स्वतः स्फूर्त वाणी को रहस्यवादी नहीं बताया जा सकता ।

कबीर, नानक व दादू में समानताः—

कबीर, नानक और दादू दयाल के मतों में कोई मौलिक भिन्नता प्रतीत नहीं होती है । इन तीनों संतो के सामने प्रायः एक ही प्रकार समस्या थी और इन तीनों ने अपनें—अपने ढ़ंग से उसपर विचार करने तथा उसको हल करने की युक्ति निकालने के प्रयत्न किए । तीनों ही प्रायः अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, किन्तु शास्त्रीय प्रमाणों से अधिक उन्होंने अपने सच्चे अनुभव का ही आश्रय लिया जिसके परिणामस्वरुप लगभग एक से ही परिणाम पर पहुँचे व तीनो को ही अंत में ज्ञात हुआ कि लोगों के भीतर बडते हुए भेदभाव, पारस्परिक वैमनस्य व दुर्भावना की जड़ उनके वास्तविक सत्य के प्रति अज्ञान के भीतर पाई जा सकती है और इस कारण इन्होंने उसी को सर्व प्रथम उखाड़कर फेंकने की चेष्टा की । इन्होंने बतलाया कि सभी कोई एक परम तत्व के स्वरुप है , किन्हीं भी दो में किसी प्रकार का भी मौलिक अंतर नहीं है

और जो कुछ भी विभिन्नता दिख पड़ती है , वह बाहरी व मिथ्या है । अतः इन तीनों ने ही इस बात की ओर पूरा घ्यान दिया है । उस वस्तु के मर्म को जानकर उसका अनुभव कराना परम आवश्यक है । जिससे हमारे जीवन में बहुत बड़ा परिर्वतन आ सकता है और हम जीवन की प्रत्येक समस्या का एक नवीन किंतु वास्तविक ढंग से हल करने का अभ्यास ग्रहण कर सकते है । समस्याएँ वही है मगर जो बात कल करने मे दुष्कर लगती थी वे आज सहज रुप में हम सुलझा पानें में हम सक्षम हैं । तद्उपरान्त तीनों ने संसार में रहते हुय भी आनन्दमय जीवन यापन करने की पद्धति की रचना की और सबको उसी का अनुसरण करने का अनुरोध किया।

सिद्धों की मान्यता थी कि ज्ञान राशि सदा घट में हा प्राप्य है जिसे कबीर नें इस प्रकार गाया।

जिस करनि तटि तीरथि जाहीं ।
रतन पदारथ घट ही मांहीं।।
पढि पढि पंडित वेद वखणै।
भीतरिं हूंती बसत न जाणै ।।–82

गुरु नानक ने भी अक्षरशः इसे ही दुहराया है –

जै कारणि तटि तीरथ जाहीं।
रतन पदारथ घट ही मॉही।।
पडि पड़ि पंडितु बादु बखाणै।
भीतरिं होदी वस्तु न जाणैं।। –83

इसी भाव को इन्हीं शब्दों में दादू ने भी गाया:–

ज़ा करणि जग ढूढिया,
सो तो घट ही मांहि।।–84
घट–घट रामहिं रतन है,।
दादू लखे न कोई।।–85

पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता।
किन हुँ न पाया पार।। –86

इन संतो की विचार धाराओं का सूक्ष्म रुप से विचार करने पर पता चलता है कि इन तीनों में कुछ न कुछ अन्तर भी अवश्य था उदाहरण के लिये कबीर साहब की विशेष आस्था यदि आत्म–प्रत्यय में निहित रही तो गुरु नानक देव की आत्म विकास और उसी प्रकार दादू दयाल की आत्म उत्सर्ग में थी। परंतु इन तीनों ने परम तत्व को भी कमशः नित्य एवं सहज 'समरस' की भिन्न भिन्न भावनाओं के अनुसार कुछ विशेष रुप से देखा। इनकी साधनाए भी तदनुसार अधिकतर कमशः विचार प्रधान, निष्ठाप्रधान एवं प्रेम प्रधान थी इसी कारण वश सुरत शब्दयोग के एक समान समर्थक होते हुए भी इन्होंने कमशः ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा लय योग की ओर ही विशेष ध्यान दिया। इन तीनो के मुख्य उपदेशों एवं समाज के प्रति इनकी पृथक–पृथक देनों पर भी यदि हम विचार करें तो कह सकते है कि कबीर साहब ने यदि स्वातंत्रय व निर्भयता को अधिक प्रधानता दी है तो नानक देव ने समन्वय तथा एकता पर विशेष बल दिया है और दादू दयाल ने उसी प्रकार सद्भाव एवं सेवा को ही श्रेष्ठ माना है परन्तु यह अर्थ कतिपय नहीं लगाया जा सकता कि इनमें से किसी भी मनोवृत्ति एकांकी थी। साधनाएँ सभी की पूर्णांग थी । विशेषताओं का कारण मात्र अवस्था भेद ही है ।

रामानन्द के दर्शन से कबीर दास प्रभावित हुए और कबीर की मान्यताओं का व्यापक प्रभाव महात्मा दादू दयाल मे विद्यमान है । दादू दयाल पर कबीर, रैदास, नानक तथा कुछ सूफी संत का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । जहाँ कबीर और दादू दोनो महात्माओं ने मानव जीवन के सभी पक्षों पर अपनी विधिनिषेध मूलक सम्मतियां व्यक्त की है किन्तु कुछ ऐसे भी उभय निष्ट विषय है उदाहरणार्थ जीव, ब्रह्म, गुरु , सबद, माया, जगत, और जाति

आदि विषयों पर इन तीनो महात्माओं ने लगभग एक ही ढंग से और एक व्यैक्तिक शैली में प्रस्तुत किया । हिन्दू मुस्लिम एकता कबीर, नानक तथा दादू सभी को इष्ट थी । परंतु कबीर उभय पक्षों के खण्डन में इतने आगे बढ गये थे कि उन्हें इस बात का ध्यान भी न रहा कि तीनो के लिये सॉझीउपासना–पद्धति की भी आवश्यकता है ? जहॉ कबीर ध्वंसात्मक प्रकिया अपनाकर हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिये कार्य क्षेत्र में उतरे , वहॉ नानक रचनात्मक प्रकिया को अपनाकर तथा दादू समन्वय सेवा की भावना अपना कर चले। गृहस्त जीवन में जीनों संत उतरे पर कबीर वहॉ से कटु अनुभूति लेकर जगत में आये और नानक एवं दादू कमशः मधुर संस्मरण तथा दादू समन्वयकारी भाव लेकर जगत में आये । कबीर अपने पुत्र कमाल पर इस बात पर रुष्ट है कि वह ईश्वर भजन न करके अर्थ– संचय में जुट गया है । और नानक जी श्री चंद पर इस लिये रुष्ट है कि उसने गृहस्थ त्याग कर सन्यास मार्ग अपना लिया है । इसी लिये उत्तरकालीन सभी गुरुपन सद्‌गृहस्थ थे और उनके शिष्य भी अतः जहॉ कबीर की सच्चे हृदय की अनुभूति न होकर कोरी बाते ही बाते है, वहॉ नानक वाणी अनुभूतिपूर्ण तथ्य सामने रखती है । महात्मा दादू दयाल कबीर के सिद्धान्तों और विचारों से प्रभावित होते हुए भी उनके 'अक्खड़पन' 'कटुप्रहार' स्वभाव व आपा' और उपदेश पद्धति की निरंकुशता का कोई भी प्रभाव दादू के दार्शनिक चिन्तन में परिलक्षित नहीं होता है । मृदुलता, शील और विनम्रता से उनकी वाणी ओत प्रोत है ।

'आपा मेटि जीवत मरै,
तो पावै करतार। :– कबीरः

"शील संतोष के सबद जा मुख बसै,
संतजन जौहरी साचों मानी।। दादूः

दादू की वाणी और आचार पूर्ण रुपेण चरितार्थ होते दिखाई देते है । दादू ने यदि बाह्यडम्बरों का खण्डन किया भी तो प्रेम रस में रसावोर वचनावली में जब कि कबीर अपनें निषेधों और खण्डनो में आक्रोश , आवेश , तीव्रता और कटुता का सर्वथा निराकरण नहीं कर सके।

कबीर अपनी बात को सामान्य जनता के बीच तो लाएँ मगर उन्होंने जटिल अलंकार (उलटबॉसियों) का प्रयोग अधिक किया जो कि अनपद जनता की समझ बाहर की बात थी। जब कि नानक की वाणी मार्मिक स्वाभाविक एवं निर्बन्ध अभिव्यक्ति लिए हुए है। व दादू की मृदुल शील और विनम्र ।

" जाका गुरु भी आंधरा चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा मिलि चले , दून्यू कूप पड़त।। :– कबीर

"अभखु भखहि भखु तजि छोड़हि अंध गुरु जिन केरा।
मासु पुराणी मासु कतेबी चहु जुगि मासु कमाणा ।।" नानक वा.

अंधा अंधा मिलि चलै दादू बांधि करतार।
कूप पड़े हम देखता, अंधे अंधा लार।। दादू

कबीर नानक और दादू तीनों सत्संगी थे । ये बड़े बड़े महात्माओं संतों सूफीओं तथा राजपुरुषों से मिले रहते थे। कबीर ने सर्वत्र कुछ न कुछ लिया और ज्ञान गूदड़ी को समृद्ध किया जबकि प्रभावशाली नानक ने यात्रा के दौरान सब पर अपना आत्मिक प्रभाव डाला व दादू की तो वाणी ही हृदय को छूने वाली थी कबीर के विकास में गुरु रामानन्द एवं मीरतकी के विचारों को 'पृष्ठभूमि' बताया जा रहा है । जबकि नानक अपने निर्माता स्वयं है । दादू आध्यात्मोन्मुख होने के लिए इन्हें प्रेरणा किसी भी बुद्धन ,वृद्ध या कबीर से इन्हें प्रेरणा अवश्य मिली किन्तु इन्होंने कबीर की मान्यताओं को ऋणी नहीं बनाया ये अपने सिद्धांतो के निर्माता स्वयं है ।

कबीर निम्न वर्ग से आए थे , उन्होंने मूर्धन्यता प्राप्त करने के लिए बहुत कड़ा संघर्ष करना पड़ा था परंतु नानक के संघर्ष –निरपेक्ष विकास में लचीलापन है तथा दादू भी कहा जाता है कि निम्न कुल में पैदा हुए परंतु इनका लालन पालन उच्च कुल में बड़े तौर तरीके से हुआ था जिससे इन्हें भी इस समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। जबकि कबीर को इन समस्याओं का सामना जन्म से ही करना पड़ा। सामान्यतया निष्काम भक्ति, प्रेम, दया, संतोष, सत्य और गुरुनिष्ठा ये तीनों में विद्यमान अखण्ड समानता के परिचायक ही है ।

नानक वाणी शांत रस से परिपूर्ण है । सांसारिक दुःखों से मुक्ति मिल सकना नाम स्मरण मात्र से संभव है । संसार से व्यवहारिक निवृत्ति और ज्ञान–सम्मत ईश्वराभिमुख प्रवृत्ति जो कि शान्त रस के मुख्य लक्षण है । नानक व दादू जी की वाणी में विकास है जैसे :–

शैशव यौवन में और यौवन प्रौढता में परिणित हो जाता है वैसे ही इनकी भाषा में यह परिणिति देखी जा सकती है । जबकि कबीर ने अन्य मतो एवं साधना मार्गों को विस्थापित कर अपनी साधना और अपने साधन–मार्ग को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। दादू में अगर ये भाव कहीं दृष्टिगोचर होता भी है तो उसमें श्रेय सतगुरु की कृपा एवं उनकी प्रेरणादायिनी तत्परता को ही जाताहै । जबकि कबीर के लक्ष्य , गन्तव्य, और उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं है , भेद केवल प्रणाली में है । एक समाज को निर्दिष्ट गन्तव्य तक फटकार से ले जाना चाहता है तो दूसरा प्यार से और तीसरा विनम्रता से। अपनी इन निर्मम फटकारों और तीव्र कटु प्रहारों के लिए कबीर स्वयं एकान्त भाव से उत्तरदायी नहीं । उनके समस्त आवेग उस युग के समाज की निरंकुश आचार परिपाटियों , धर्म–नेताओं की रुढ़ भ्रामक मिथ्या चर्चाओं की प्रतिकिया में थे। प्रतिकिया सदैव वेगवती होती है । किसी भी आन्दोलन या प्रवाह को गति देने के लिये

यह प्रतिक्रिया–जात आक्रोश परम उपयोगी और आवश्यक होता है । कबीर दास जी के अक्खड़पने का मूल रहस्य यही है । परंतु यही सब होते हुए भी आत्मशुद्धि और आत्म सिद्धि की तूरी बजाने की अपेक्षा कबीर अपने सम्बन्ध में स्वयं कुछ न कहकर इसके लिए समाज की तत्वग्रहणी दृष्टि पर विश्वास और भरोसा कर सकते थे, किन्तु मनुष्य शुद्ध धर्म –साधन को उसके आसन से बलात् धकेल कर पतन के जिस पांति के गर्त में फेंक देना चाहता था उसके वर्जन और ताड़न के लिये कबीर के पास सिवाय इसके कि वे हँस कर मनुष्य को डॉट–फटकार कर सन्मार्ग की ओर लाने का प्रयास करते थे और कोई रास्ता न था।

संत दादू धर्म–साधना, वत्सलता, सहजता और मृदुलता के पुष्प–रस से आप्लावित हैं । सिद्धिनाथ तिवारी के मतानुसार दादू में कबीर की तरह तीखा स्वर कहीं नहीं मिलता है । उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि भक्त होने के लिये नम्र और शीलवान होना जरुरी है। मूर्ति पूजा, तीर्थयात्रा, छापातिलक, पशु–बलि, आदि को आग्रह कहते समय इनकी शैली में कहीं भी उद्दण्ड नहीं हुई है।

अध्याय–6

1, श्री गुरू ग्रन्थ साहब , बार मलार की , महला –1, पृ. , 1288

2, ' ए. ग्लासरी ' , विलयम कुक , इ. भा. –4 , पृ. , 417–20 एवं पृ. , 479–80

(अ,) . मिडिवल मिस्टिसिज्म ऑफ इण्डिया ', क्षितिमोहन सेन , पृ. , 169

(ब,) 'इण्डियन थीज्म ', डॉ. निकल मैकिनकल , पृ. , 155

3, ' मिस्टिक्स ' , जे.सी. ओमन , इ. , पृ. , 198–200

4, ए. ग्लासरी ' , एच. ए. रोज , इ. , भा. –2 , पृ. , 82

5, वही , ई. भाग –3 , पृ. , 177

6, आध्यात्म भजन माला , भाग--2 , पृ. , 173--74

7, ' कवि चरित' भाग--1,2 , श्री के. का .शास्त्री

8, -- गुजराती साहित्य , पृ. , 138

9 , वही

10 , ' फॉर्बस-गुजराती सभा महोत्सव ग्रन्थ , ' पृ. 320

11, कृ. स. क. दूले राय काराणी , पृ. , 149

12 , चौ. स. परि . , रिपोर्ट

13, फा. गु. स. म. ग्र. , पृ. , 322

14, वही ,

15, प्राचीन कवियो अने तेमनी कृतिओ , पृ. , 300 और ' संत महिमा ' अप्रकाशित ग्रन्थ का उल्लेख , गु . प्रे. में हस्त प्रति सुरक्षित

16 , ' भजन सागर ' भाग 1--2 , प्रकाशक सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय , अहमदावाद एवं' अध्यात्मक भजन माला' भाग --2 , कहान्जी धर्म सिंह , सं. 1959

17, कल्याण संत वाणी अंक , पृ. 445, वर्ष --29 , संख्या --1

18,' संत काव्य ', पृ. , 392

19, वही , 20

20 , हिन्दी का. नि. स. , पृ. , 81

21, ' चिन्तामणि ' रवि साहब कृत , हस्त प्रति सं. 6/2/2 डाही . पु. नड़ियाद

22, भारत के संत महात्मा , पृ. , 718

23, र. भा. स. वा. , पृ. , 4

24, क. स. क. , पृ. , 168

25, प्रीतम वाणी , पृ. , 38

26 , रा. रा0 , सुरेश दीक्षित(फजं. गु. स. , त्रैमासिक , अंक --2 , 1940, पृ. , 173)

27, जयन्ती व्याख्यानो , पृ. ,89'(धीरा अने तेमनी कविता) श्री कौशिक राम मेहता

28, क. सं. क. , पृ. 187, श्री दूलेराय काराणी

29, र. भा. स. वा. , पृ. , 444

30, वही , पृ. , 442

31 , वही , पृ. , 452

32, सोरठी संतवाणी , झवेरचन्द मेघाणी

33, र. भा. स. वा. 'भूमिका ' जबकि काराणी ने संवत 1835 दिया है, देखिए क. सं. क. , पृ. , 172

34,प्रा. का. सु. , भाग–4 , पृ. , 288 रचना 'महीना '

35, वही , पृ. , 301

36 , 'साहित्य प्रवेशिका ' , पृ. 57–58

37 ,' ए. ग्लासरी ' एच. ए. रोज , भाग –2 , पृ. , 110

38 , ' दि सिक्ख रिलिजन ' , एम. मैकालिफ , भाग –6 , पृ. , 357–58

39 , दि सिक्खस एण्ड देयर बुक ' , सी एच. लाकंलिन , लखनऊ , 1946, पृ. , 11

40 , दि सिक्ख रिलिजन ' , एम. मैकालिफ , भाग –6 , पृ. , 356–57

41, 'मिडिवल मिस्टिसिज्म ' , क्षिति मोहन सेन , पृ. ,17

42, दि सिक्ख रिलिजन ' , एम. मैकालिफ , भाग –6 , पृ. , 356–57

43, वही , पृ. , 84–6

44, वही , पृ. , 101–102

45, मिडिवल मिस्टिसिज्म , पृ. , 111

46 , आदि ग्रन्थ ,(तरन तारन संस्करण) सलोक –48 , पृ. ,1380

47 , वही , सलो क –14 , पृ. , 1378

48 , वही , सलोक –50 , पृ. , 1352

49 , ' आदि ग्रन्थ ' (तरन तारन संस्करण) सलोक –75 , पृ. , 1381

50 ,दि सिक्ख रिलिजन ' , भाग–6 , पृ. , 4146

51, रागु सोरठि , पद –1 , वार , पृ. , 658

52, एन आउट लाईन ऑफ दि रिलीजियस लिटरेचर ऑफ इण्डिया , फर्कुहर , पृ. , 190–91
53, हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य , डॉ. प्रभाकर माचवे , पृ. , 51
54 ,'गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास , पृ. , 252
55, श्री दूलेराम काराणी , क. स. क.,पृ., 204
56 , हि . म. स. दे. ,आ . विनय मोहन शर्मा , पृ. , 65
57 , वही , पृ. , 69
58 , हि . नि . का दा. , पृ. 24–25
59, Gujarat and Its Litrature , Dr . K. M. Munshi , P. 116
60 , रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव , पृ. 9–10
61, देखिए – जगद्गुरू , श्री रामानन्दाचार्य
62, उत्तरी भारत की संत परंपरा , पृ. , 287
63, Medeival Myslision of India , P. 98
64, हि . का. नि. सं. , पृ. , 118, डॉ. बड़थ्वाल
65, चरोत्तर सर्व संग्रह , पृ. , 822
66, उत्तरी भा. सं. प.,आ.परशुराम चतुर्वेदी , पृ. , 291
67,'अथसंग्रह ब्रह्म निरूपण –प्रका. महंत श्री स्वरूप दास जी , कबीर आश्रम , जामनगर
68 , साहित्य –संदेश,'संत विशोषांक , अगस्त 1958, श्री मिश्रीलाल शास्त्री , पृ. , 62
69 , निजानन्द चरितामृत , पृ. , 213
70 , देखिए – 'सुन्दर सागर ' – भूमिका , पृ. , 25–26
71, सूॅफीमत साधना और साहित्य , पृ., 409–10
72, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास , पृ. , 302
73, हि. सा. का. आ. इ. , पृ. , 303
74, वही , पृ. , 304
75, सूफी साधना और साहित्य , पृ. , 416–17

76, वही

77 ,हि. सा. आ. इ. , डॉ. रामकुमार वर्मा , पृ. , 208

78 हिन्दी साहित्स का आलोचनात्मक इतिहास , पृ. , 288

79,'संत साहित्य ' सुदर्शन मजीठिया , पृ. , 106

80,' शिष्य मेरा कोई नहीं , गुरू सारा संसार ' –अखो

81,देखिए – मध्यकालीन साहित्य प्रवाह

82,कबीर ग्रन्थावली , पृ. , 102

83,नानक वाणी , पृ. , 202

84,दादू दयाल की बानी , भाग–1 , पृ. , 242

85,वही , पृ. , 7

86,वही , पृ. , 143